नेपाल में 1990 से संवैधानिक विकास

एम. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु शोध-प्रबंध

राकेश कुमार मीणा

दक्षिण एशियाई अध्ययन संभाग
दक्षिण, मध्य, दक्षिण-पूर्व एशियाई एवं दक्षिण-पश्चिम प्रशांत अध्ययन केन्द्र
अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 110067

2004

CENTRE FOR SOUTH, CENTRAL, SOUTHEAST ASIAN & SOUTH WEST PACIFIC STUDIES
SCHOOL OF INTERNATIONAL STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110 067

Phone : 26704350
Fax : 91-11-2671 7586
91-11-2671 7603

21 July 2004

Certificate

Certified that dissertation entitled, "**Constitutonal Development in Nepal Since 1990** (नेपाल में 1990 से संवैधानिक विकास)", submitted by me in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of MASTER OF PHILOSOPHY, has not been previously submitted for any other degree of this or any other university and is my own work.

Signature of the student

We recommend that this dissertation may be placed before the examiners for evaluation.

(Prof. Uma Singh)
Chairperson

(Prof. S.D. Muni)
Supervisor

CHAIRPERSON
Centre for South, Central, South East Asian and South West Pacific Studies
School of International Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

SUPERVISOR
Centre for South, Central, South East Asian and South West Pacific Studies
School of International Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

आभार

सर्वप्रथम, इस सम्पूर्ण शोध प्रबंध की रचना के लिए मैं अपने शोध-निर्देशक प्रो. एस. डी. मुनि का हृदय से आभारी हूँ। इस शोध विषय को पूर्ण करने में उन्होंने न केवल अपना बहुमूल्य समय दिया वरन् मुझे व्यक्तिगत तौर से भी निर्देशित किया। उनके निर्देशन के अभाव में इस शोध प्रबंध को पूरा करना मेरे लिये असंभव था। मेरी गलतियों को सुधारने एवं मेरी समस्यों का समाधान निकालने के लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

मैं अपने दक्षिण एशियाई अध्ययन विभाग के प्रो. सी. राजा मोहन प्रो., महेन्द्र पी. लामा, प्रो. उमा सिंह, प्रो. सविता पांडे, प्रो. आई. एन. मुखर्जी एवं प्रो. संजय भारद्वाज का आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने मेरे शोध कार्य करने के दौरान मेरे मनोबल को बढाया। इसके अतिरिक्त मैं अपने विभाग के कर्मचारीगण का भी आभारी हूँ। जिन्होंने शोध सबंधी औपचारिकताओं को पूरा करने में मेरी काफी मदद की है।

मैं अपने मित्र ध्रुवज्योति एवं कमलाकान्त का भी आभार प्रकट करता हूँ। जिन्होंने मुझे शोध सामग्री उपलब्ध करने एवं जटिल समस्यों का निराकरण करने में मेरी सहायता की। मैं अपने अन्य मित्रों नौशाद, नरेश, आकाश, लोकेश, सान्तेश, भारत, जेम्स एवं चन्द्रभूषण का भी आभारी हूँ। जिनके सहयोग से मैंने मेरे शोध कार्य की सूक्ष्म त्रूटियों को दूर करने की कोशिश की है। इसके अतिरिक्त मैं अपने वरिष्ठ साथियों पॉल सोरेन ब्यास देव बेहरा एवं योमे के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने मुझे मेरे शोध सबंधी दुर्लभ अध्ययन सामग्री प्रदान करके शोध प्रबंध की गुणवत्ता में वृद्धि की है।

मेरा अतिरिक्त आभार जे.एन.यू. केन्द्रीय पुस्ताकालय, नेहरु मेमोरियल (तीन मूर्ति) पुस्ताकालय, आई.डी.एस.ए. पुस्ताकालय, एस.ए.एफ. पुस्ताकालय,

आई.सी.डब्ल्यू.ए. (सप्रू हाउस) पुस्ताकालय एवं ओ.आर.एफ. पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी है। जिनकी सहायता से मुझे मेरे शोध प्रबंध के लिये स्तरीय पुस्तकें एवं प्राथमिक स्रोत प्राप्त हुए।

अन्ततः मैं अपने पिताजी एवं माताजी का तहेदिल से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने पूर्ण संयमता का परिचय देते हुए मेरी हर संभव सहायता की।

पुनः एक बार मैं सभी प्राध्यापकों मित्रगणों परिवारजन एवं अपने शोध निर्देशक के प्रति हदय से आभार प्रकट करता हूँ।

—राकेश कुमार मीणा

प्रस्तावना

नेपाल में संवैधानिक विकास देश की परम्परागत सामन्ती शक्तियों की छत्र छाया में हुआ है। विगत शताब्दी के मध्य से नेपाल में लोकतांत्रिक हवाओं का आगमन प्रारंभ हुआ। जिसके फलस्वरूप सन् 1948 में राणाओं के नेतृत्व में राष्ट्र का प्रथम संविधान निर्मित हुआ। सन् 1950 से देश में राजतंत्र के पुर्नबहाल होने के पश्चात् यह सोचा गया कि लोकतंत्र की नींव मजबूत होगी। परन्तु राष्ट्र की लोकतांत्रिक शक्तियों की अक्षमता एवं असमर्थता के कारण राजतंत्र ने देश की शासन व्यवस्था में अहम् भूमिका निभाना प्रारंभ कर दिया। नेपाल में सन् 1990 तक पांच संविधान का निर्माण हो चुका है। जिनमें से मात्र वर्तमान संविधान ही विगत संविधानों की तुलना में लोकतंत्र को अधिक महत्व देता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को छः अध्यायों में विभाजित किया गया है। जिनके अन्तर्गत नेपाल के संवैधानिक विकास को प्रदर्शित करने की कोशिश की गई है। यह अध्ययन प्रमुखतया सन् 1990 के संविधान एवं उसके पश्चात् हुए संवैधानिक विकास पर आधारित है।

अध्याय एक में नेपाल के संवैधानिक तंत्र के विकास को परिलक्षित किया गया है। जिसके अन्तर्गत देश के विगत संविधानों (1948, 1951, 1959, 1962) का विस्तृत रुप से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इन संविधानों की उत्पत्ति के राजनैतिक कारणों का भी वर्णन किया गया है।

अध्याय दो में सन् 1990 के संविधान की उत्पत्ति के राजनीतिक कारणों का व्यापक तौर पर उल्लेख किया गया है। यहां इस संविधान के प्रावधानों का वर्णन विगत संविधानों से तुलनात्मक तौर पर किया गया है। इस अध्याय में सन् 1990 के संविधान द्वारा आए संस्थागत परिवर्तनों का भी उल्लेख किया गया है। वस्तुतः यह संविधान जन आन्दोलन के द्वारा देश में लाया गया। अतः लोकतंत्र एवं राजतंत्र की साम्यता पर यह संविधान आधारित रहा।

अध्याय तीन में इस नवीन संविधान के समक्ष आए राजनीतिक पहलूओं की विवेचना की गई है। जिनसे इस संविधान के प्रावधानों की औचित्यता पर प्रश्न उठने लगे। यद्यपि इस संविधान में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आए परन्तु आंशिक परिवर्तन अवश्य आए। इन सभी सूक्ष्म परिवर्तनों का भी इस अध्याय में वर्णन किया गया है।

अध्याय चार में वर्ष 1990 के संविधान की उपलब्धियों एवं कमजोरियों का उललेख किया गया है। देश में विगत तेरह सालो की राजनीति ने संविधान की आत्मा को काफी चोट पहुंचाई है। यद्यपि संविधान में प्रावधान अच्छे रहे परन्तु प्रयोगात्मक तौर पर इनका दुरुपयोग किया गया है। जिसके कारण इस संविधान के सामने सदैव संकट आते रहे है।

अध्याय पांच में राष्ट्र के माओवादी आन्दोलन का संविधान के प्रावधानों पर प्रभाव का वर्णन किया गया है। इस माओवादी आन्दोलन ने न केवल संविधान के प्रावधानों का उल्लघंन किया है वरन जनता के मानवाधिकारों का भी हनन किया है। वहीं सरकार द्वारा इस आन्दोलन को दबाने के दौरान मानवाधिकारों के हनन में निरन्तर वृद्धि हुई है।

अध्याय छः में इस सम्पूर्ण शोध का निष्कर्ष एवं भविष्य की संभावनाओं के बारे में वर्णन किया गया है। जिसके अन्तर्गत वर्ष 1990 के संविधान के समक्ष उपजी चुनौतियों एवं संकटों के निराकरण के लिये सुझाव भी प्रस्तुत किये गये है। साथ ही वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर संविधान के भविष्य की संभावनाओं का भी अनुमान लगाया गया है।

इस सम्पूर्ण शोध कार्य के दौरान हिन्दी भाषा में अध्ययन सामग्री का अभाव रहा एवं समस्त अध्ययन सामग्री अंग्रेजी भाषा में होने के कारण कुछ भाषागत समस्याएं आती रही। अतः भाषायी गलती के लिये मैं क्षमा चाहता हुँ।

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	पृष्ठ संख्या
आभार	**i-ii**
प्रस्तावना	**iii-iv**
1. नेपाल के संवैधानिक तंत्र का विकास	**1—25**
2. 1990 के संविधान की प्रकृति (राजनीतिक संदर्भ में)	**26—43**
3. 1990 के संविधान के समक्ष उभरते राजनीतिक पहलू एवं परिवर्तन	**44—63**
4. 1990 के संविधान की उपलब्धियाँ और कमजोरियां	**64—79**
5. माओवादी आन्दोलन और संवैधानिक संकट	**80—91**
6. निष्कर्ष एवं भविष्य की संभावनाएं	**92—96**
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	**97—105**

अध्याय -1

नेपाल के संवैधानिक तंत्र का विकास

भूमिका

आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में सरकार की भूमिका में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रत्येक सरकार की संरचना द्वारा जनता की आवश्यकताओं एंव उम्मीदों की पूर्ति करने की कोशिश की जाती है।

संविधान इस सरकारी संरचना को वह पथ प्रदान करता है जिसके द्वारा निर्दिष्ट अपेक्षाओं को पूरा किया जाता है। संविधान एक आधुनिक अवधारणा नही है बल्कि यह अवधारणा अरस्तू एंव उनके पूर्व से चली आ रही है। ग्रीक युग के समय के दौरान संविधान एक जीवन्त अवधारणा थी। 'इसमें एथोस (समाज एंव संस्कृति का विशिष्ट गुण) या आत्मा का सम्श्रिण है जिसमें औपचारिक राजनीतिक संस्था को जीवन प्रदान किया जिसे आधुनिक राजनीति विज्ञान राजनीतिक संस्कृति के नाम से संज्ञा देता है।'[1] संविधान की अवधारणा बीते एक हजार साल में काफी चुनौतियों से गुजर चुकी है। आधुनिक दृष्टिकोण संविधान को एक अधिनियमन की तरह देखता है जो कि 'एक सचेतन, तर्कशील एंव विचारणीय प्रक्रिया है। यह एक प्रतिमानकीय संरचना है जो कि सरकार को निर्देशित करती है एंव जिसका सार लिखित या अलिखित प्रलेख के रुप में अभिव्यक्त हो सकता है।'[2]

---

1 Mark N Hagopian, *Regimes, Movements and Ideologies: A Comparative Introduction to Political Science*, (New York: Longman Publications, 1984) p. 39.

2 Ibid, pp. 39 – 40.

अतः यह कहा जा सकता है कि संविधान वह अवधारणा है जो एक राजनैतिक व्यवस्था को कुछ निश्चित निर्दिष्ट नियम प्रदान करती है जिनके आधार पर सरकार शासन व्यवस्था को संचालित करती है।[3]

जनतांत्रिक संविधान की अवधारणा सीमित सरकार को लाती है जो कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को संरक्षित करती है और तानाशाह सरकार से मुक्ति दिलाती है। यह नागरिकों की स्वतंत्रता, सामाजिक अधिकार और व्यक्ति की स्वतंत्रता आदि को प्रोत्साहन देता है। अतः संविधान सरकार और नागरिक के मध्य एक लोकप्रिय संबध बनाता है।

नए उभरते हुए राष्ट्रों में, संविधान की एक तरह से लोकतंत्र और विकासोन्मुख राजनीति से पारस्परिकता है। इन राष्ट्रों में संविधान सरकार को वैधता प्रदान करते है। यह वैधता मैक्स वेबर के मॉडल के अनुसार भी हो सकती है। उन्होंने तीन मॉडल बताए,परम्परागत, कानूनन तर्कशील एंव करिश्माई।[4] यहां परम्परागत मॉडल उन राष्ट्रों में लागू हो सकता है जहां संविधान का निर्माण और पुर्निमाण पुराने अभिसमयों, नियमों और परम्परागत विधियों के आधार पर किया जाता है। कानूनी तर्कशील मॉडल तब लागू हो सकता है जब संविधान का निर्माण तर्कशीलता एंव राष्ट्र की विधिक प्रवृति को बचाये रखने के आधार पर किया जाता है। करिश्माई मॉडल उन राष्ट्रों में लागू होता है जहां संविधान का ढांचा राष्ट्र के एक नेता या नेताओं के समूह के व्यक्तित्व, अभिरुचि और करिश्मे के आधार पर निर्धारित होता है।

ये तीन मॉडल सभी उभरते हुए राष्ट्रों में समान रुप से या अन्य रुपों में साधारणतया पाए जाते है एंव साथ ही साथ ये संविधान स्वंय समय के अनुसार निर्मित एंव पुनिर्मित होते रहते है। संविधान, जो एक ऐसी प्रकिया है जो उस

---

3 Andrew Heywood, *Key Concepts in Politics*, (London: Macmillan Press, 2000), p. 196.

4 Carl J Friedrich, *Constitutional Government and Democracy*, (Calcutta: Oxford and IBH Publication, 1968), p. 583.

सरकार के कार्यो पर बंधन लगाती है और समुदाय में एक एकात्मक शक्ति के रुप में प्रभावकारी होती है।[5]

विकासशील राष्ट्रों में संविधानवाद एक परिवर्तनशील अवधारणा है। इन राष्ट्रों में संविधान का पुर्ननिर्माण होने के कारण संविधान की निश्चितता और स्थिरता का प्रायः अभाव रहता है। इन राष्ट्रों द्वारा दूसरे राष्ट्र के संवैधानिक व्यवस्था को अपनाने के कारण एंव संवैधानिक सभा द्वारा संविधान निर्माण के विश्लेषण में कमी होने के कारण ये राष्ट्र अपनी राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था से तालमेल नही बैठा पाते। जिसके परिणामस्वरूप एक अस्थिर संविधानवाद की छवि अंकित होती है।

दक्षिण एशिया में ज्यादातर राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन राष्ट्रों को एक ऐसी शासन व्यवस्था की आवश्यकता थी जो देश के सामाजिक एंव आर्थिक स्तर को सुधार सके। इन राष्ट्रों के समक्ष इस समय ब्रिटिश संविधान जैसी परिपक्व संवैधानिक व्यवस्था थी। जो कि काफी लम्बे समय से शासन के उतार चढावों से गुजर चुकी थी तथा इस क्षेत्र के राष्ट्र ब्रिटिशों के सम्पर्क में काफी समय तक रहे। अतः यहां के राष्ट्रों ने संविधान निर्माण में विभिन्न देशों के संविधानों की सहायता ली परन्तु मूल आधार ब्रिटिश संविधान ही रहा।

इस कारण, जो देश ब्रिटिश प्रशासनिक ढांचे के साथ जुड नही पाए वे इस उदारवादी लोकतांत्रिक ढांचे को ग्रहण नही कर पाए। अतः यंहा संविधान को सरकार का मूल आधार न मानकर उसे मात्र एक निर्देशिका माना गया जिसमें उसे पुर्निमित किया जा सकता है या दरकिनार भी किया जा सकता है।

नेपाल का आधुनिक राजनीतिक इतिहास भी ऐसे ही रास्ते से गुजरा है। नेपाल कभी भी प्रत्यक्ष रुप से ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन नही रहा तथा 1950 तक यंहा सामंतवाद की जड़ें रही। एक नेपाली नागरिक के लिए स्वतंत्रता और सम्प्रभुता न केवल एक सपना था बल्कि सम्पूर्ण सरकारी ढांचा एक ही परिवार

---

[5] Ibid, p. 170.

के हाथों में था। जहां पर नरेश पूजनीय था परन्तु उसके पास राजनैतिक शक्ति नही थी। ऐसे राजनीतिक वातावरण में उदार लोकतांत्रिक ढांचे को अचानक स्थापित करने से देश उतार चढाव की स्थिति में आने लगा।

ऐतिहासिक एंव राजनीतिक पृष्ठभूमि

नेपाल दक्षिण एशिया की दो महाशक्तियों भारत और चीन के मध्य हिमालय की तराइयों में अवस्थित है। यहॉ प्राचीन काल से राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था रही परन्तु 19वीं शताब्दी के मध्य से 20वीं शताब्दी के मध्य तक राणाओं की कुलीनतंत्रात्मक शासन व्यवस्था रही, इसके पश्चात पुनः परिवर्तन आया एंव संवैधानिक राजतंत्र अस्तित्व में आया जों कि वर्तमान में जारी है। शासन प्रणालियों में परिवर्तन होने के बावजूद भी नेपाल में सदैव हिन्दू शासकों का शासन रहा है। नेपाल का एकीकरण सन् 1769 में प्रथ्वीनारायण शाह के द्वारा किया गया। तब से नेपाल एक राष्ट्र के रूप में पहचाना जाने लगा। सन् 1846 में नेपाल की शासन व्यवस्था में परिवर्तन आया। राणा परिवार ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली एंव नरेश को महल में कैद रखा गया।[6] इस प्रकार नेपाल में राणाओं का स्वेच्छातंत्र प्रारंभ हुआ और सामंतवाद की जडें मजबूत हुई। यह राणाओं का निरंकुश शासन नेपाल में लगभग 104 वर्षों से अधिक चला। इस प्रकार इस समयावधि से राष्ट्र की [de facto] वास्तविक शक्तियॉ राणा परिवार के हाथों में थी एंव [de jure] कानूनी शक्तियॉ यधपि कैद में रह रहे नरेश में निहित थी।[7]

बीसवी शताब्दी के उतरार्द्ध में दक्षिण एशिया, में मुख्य रुप से भारत में, स्वतंत्रता की लहरें चलने लगी। उपनिवेशवाद एंव दासता के विरुद्ध उग्र आन्दोलन प्रारभ होने लगे। जिसका असर नेपाल में भी नजर आने लगा।

---

6 R S Chauhan, *Struggle and Change in South Asian Monarchies*, (New Delhi: Chetana Publications, 1977), p. 12.

7 Ibid.

राणाओं के समय में अलगाववादी नीति एंव शिक्षा का प्रसार न हाने के कारण जनता के मध्य राजनीतिक जागरुकता आना काफी मुश्किल था। परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात नेपाल के जनमानस में राजनीतिक चेतना का क्रमिक रूप से विकास होने लगा। जिसके प्रमुख कारण थे- नेपाल की गोरखा सेना का विश्व युद्ध में सम्मिलित होना, भारत में नेपाली छात्रों एंव बुद्धिजीवी वर्ग का शिक्षा के जरिये सम्पर्क में रहना। नेपाल का समाज इस समय के दौरान परम्परागत शक्तियों एंव रुढियों में जकडा हुआ था। शासन पर उच्च जातियों, ब्राहम्ण, नेवार एंव क्षत्रियों का एकाधिकार था। इसी समय के दौरान भारत के पूर्वी क्षेत्रों से आर्य समाज का संदेश फैलने लगा जिसमें वेदों का शुद्धीकरण की बात कही गई।[8] जिसका कुछ मात्रा में नेपाल में भी असर हुआ। इस प्रकार 20वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में नेपाल में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एंव आर्थिक सुधारों की प्रबल मांग की गई।

नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस और प्रजा परिषद दलों की स्थापना के बाद नेपाल में राणाओं के निरंकुश शासन का घोर विरोध होने लगा। नेपाल के नेता बिश्वेश्वर प्रसाद कोईराला, दिल्ली रमण रेगमी, सूर्य प्रसाद. उपाध्याय, हरि प्रसाद प्रधान, पुष्पलाल एंव उदयराज लाल आदि ने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया एंव महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये अहिंसक आन्दोलन, सत्याग्रह, हडताल, धरने इत्यादि शासन के विरोध करने के तरीकों को इन नेताओं ने सीखा।[9] नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस ने 4 मार्च, 1947 में नेपाल में राणा शासन के विरोध में अहिंसक आन्दोलन प्रारंभ किया।[10] जिसे राणा शासकों ने दबाने की भरपूर कोशिश की। जिसमें काफी लोग मारे गए एवं मनमोहन अधिकारी, बिश्वेश्वर प्रसाद कोईराला, बालचन्द शर्मा एंव गिरिजा प्रसाद कोईराला आदि को गिरफतार कर लिया गया। कलकत्ता में नेपाली राष्ट्रीय

---

8 Bhuwan Lal Joshi and Leo E Rose, *Democratic Innovations in Nepal*, (Berkeley, Los Angeles: University of California Press, 1966), p. 50.

9 R S Chauhan, *The Political Development in Nepal 1950 – 70: Conflict Between Tradition and Modernity*, New Delhi, Associated Publishing House, 1971, p. 13.

10 Ibid, p. 24.

कांग्रेस की बैठक में नेताओं को रिहा करने का आहवान किया गया। परन्तु राणा शासन ने इसकी कोई परवाह नही की। इसके बाद दलों के नेताओं ने 'सत्याग्रह' प्रारम्भ किया जिससे देश भर में हडतालें, रैलियां एंव जूलूस राणा शासन के विरुद्ध निकाले गए।[11]

नेपाल की परिस्थितियां इस समय बदलने लगी एंव राणा शासन का अस्तित्व खतरे में दिखाई देने लगा साथ ही आन्तरिक एंव बाहरी दबाव बढने लगा। पदम शमशेर राणा ने अपनी उदार नीति का परिचय देते हुए अन्ततः 16 मई, 1947 को शासन में सुधारों की घोषणा की एंव राजनीतिक दलों के नेताओं की रिहाई के आदेश भी जारी किए। इस प्रकार नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस ने हडताल को वापस ले लिया। पदम शमशेर राणा ने जिन सुधारों की अपने भाषण में चर्चा की, वे इस प्रकार है, राजनीतिक उदारीकरण के लिए एक सुधार समिति की स्थापना, विभिन्न जिलों में निर्वाचित नगरपालिका एंव जिला बोर्ड की स्थापना, कार्यपालिका से न्यायपालिका को पृथक करना एंव स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना, काठमांडू में स्वायत्त सात नए विधालयों की स्थापना और देश के वार्षिक बजट का प्रकाशन।[12] यधपि राणाओं के मध्य इन सुधारों को लेकर मतभेद था फिर भी इन्हें लागू किया गया। इन सुधारों का महत्व इस अर्थ में है कि काठमांडू में पहली बार वयस्क मताधिकार के आधार पर नगरपालिका के चुनाव करवाये गए जो कि नेपाल के इतिहास में प्रथम लोकतांत्रिक प्रयोग था।[13]

1948 का संविधान

1940 के दशक में लोकतंत्र की हवाओं में तेजी आने लगी। जिसका असर नेपाल में भी आंशिक रूप से दिखाई देने लगा। सन् 1948 में पश्चिमी संविधानों की तर्ज पर नेपाल में संविधानवाद की अवधारणा का विकास प्रारम्भ

---

[11] Ibid. p.25.
[12] Joshi and Rose, n. 8, p. 62.
[13] Anirudha Gupta, *Politics in Nepal 1950 – 60*, New Delhi, Kalinga Publications, 1993, p. 31.

हुआ। परन्तु विकास के इस पश्चिमी ढांचे पर तृतीय विश्व के देशों की सरकारें कितनी सफल होगीं इस तथ्य पर विचार नहीं किया गया। नेपाल में परम्परागत समाज होते हुए भी इस अवधारणा को अपनाया गया क्योंकि कुलीनतंत्र सरकार को अपनी सत्ता जाने का डर था।

अन्ततः 1 अप्रेल, 1948 को पदम शमशेर राणा ने नेपाल राष्ट्र के प्रथम लिखित संविधान की घोषणा की।[14] यह संविधान नेपाल सरकार अधिनियम, 1948 कहलाया। इस संविधान के जरिए देश में लोकतांत्रिक प्रकिया प्रारम्भ हुई। अतः यह संविधान नेपाल के इतिहास में मील का पत्थर बना।इस संविधान के निर्माण के लिए भारत से श्री प्रकाश,रघुनाथ सिंह को लखनऊ विश्वविद्यालय से आमंत्रित किया गया।[15] इस संविधान में राजतंत्र को राजनीतिक शक्तियों से पृथक रखा गया तथा समस्त शक्तियॉ राणा प्रधानमंत्री ने स्वंय अपने पास रखी। सन् 1948 के संविधान में एक लघु प्रस्तावना एवं 6 भाग और 68 अनुच्छेद तथा साथ में एक अनुसूची रखी गई।[16] इसके अर्न्तगत नेपाल की जनता को मौलिक अधिकार प्रदान किये गये जैसे भाषण की स्वतंत्रता,प्रेस की स्वतंत्रता,सघं बनाने की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, कानून के समक्ष समानता एंव निजी समपत्ति का अधिकार। कार्यपालिका की शक्ति राणा प्रधानमंत्री में निहित होगीं एंव उसकी सहायता के लिए 5 सदस्यीय मंत्रिमंडल होगा। देश के प्रशासन को चलाने का उत्तरदायित्व मंत्रिमंडल पर था। संविधान के प्रावधानों के अनुसार द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था की गई। किसी भी सदन में प्रस्तावित विधेयक बिना राणा प्रधानमंत्री की स्वीकृति पर कानून नही बन सकता। संविधान में न्यायपालिका का भी प्रावधान था जो कई भागों में बंटी थी जैसे न्यायिक समिति, उच्च न्यायालय, अदालतें और नगर या गांव पंचायतें। परन्तु अन्तिम शक्ति राणा प्रधानमंत्री में ही रही ।

---

[14] R S Chauhan, n. 9, p. 25.
[15] Gupta, n. 13, p. 31.
[16] S K Chaturvedi, *Nepal: Internal Politics and its Constitutions*, New Delhi, Inter India Publications, 1993, p. 37.

यद्यपि संविधान का निर्माण जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए किया जाता है परन्तु सन् 1948 का संविधान राणातंत्र के शासन को सुरक्षित रखने का आभास देता है। नेपाल का अतीत इतना भारी था कि उसने इस आधुनिकता एंव विकास को मिट्टी के ढेर की तरह ढहा दिया और सन् 1948 का संविधान बिना लागू हुए ही निरस्त हो गया।

पदम शमशेर राणा के प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा देने के बाद मोहन शमशेर सत्ता में आए और उन्होंने पूर्व घोषित सुधारों एंव संविधान को पूरी तरह नकार दिया। उन्होंने सत्ता में आते ही पुनः परम्परागत रिवाजों के आधार पर शासन प्रकिया प्रारंभ की। इस समय के दौरान दक्षिण एशिया में राजनीतिक परिवर्तन का दौर चल रहा था। जो कि राणातंत्र के लिये अनुकूल नही था। परन्तु राणा प्रधानमंत्री इस तथ्य को नही समझ पाए और उन्होंने उन अव्यवहारिक नीतियों का अनुसरण किया जो कि आगे चलकर उनके लिए आत्मघाती साबित हुई।[17] त्रिपुबार सिंह, गोपाल प्रसाद रिमाल और बिजय बहादुर मल्ला आदि युवाओं के समूह द्वारा अक्टुबर, 1948 में नेपाल प्रजा पंचायत का गठन किया गया। इस संगठन की मांग थी कि तुरन्त संविधान के प्रावधानों को लागू किया जाए।[18] वहीं दूसरी तरफ बी. पी. कोईराला ने राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के साथ अन्दरुनी तौर पर राणा शासन का विरोध करना प्रारंभ किया । परन्तु योजना की खबर सरकार को पता लगने से उन्हें पुलिस द्वारा घेर लिया गया। यद्यपि नेपाल एंव भारत के समाजवादी नेताओं ने नेपाल के निरंकुश राणातंत्र के विरुद्ध 'सत्याग्रह' चलाने की धमकी दी परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ। राणा शासकों के इस रुख ने लोकतांत्रिक शक्तियों एंव संचार साधनों को आन्दोलन चलाने के लिए विवश किया तथा यह कहा गया कि, 'स्वार्थी राणाओं से सुधारों की आशा करना उसी प्रकार है जैसे किसी बांझ गाय से दूध की आशा करना'।[19] वहीं दूसरी तरफ निचले क्रम के

---

[17] Ibid. p. 48.
[18] Gupta, n. 13, p. 38.
[19] Ibid. p. 3.

राणा जो कि सत्ता में नहीं थे उन्होंने भी कलकत्ता में नेपाली डेमोक्रेटिक कांग्रेस की स्थापना कर राणा शासन का विरोध करना प्रारंभ कर दिया।[20] 22, अप्रेल 1949 को पुष्पलाल श्रेष्ठा के नेतृत्व में कलकत्ता में कम्यूनिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इस पार्टी ने भी शासन का विरोध किया।

प्रधानमंत्री मोहन शमशेर राणा ने आन्तरिक दबावों एंव जनमानस में व्याप्त उग्रता पर नियंत्रण पाने के लिए कूटनीति का प्रयोग किया तथा उन्होंने बाहरी शक्तियों जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, बेलजियम आदि से संबध बनाये। वहीं भारत ने नेपाल के राणा प्रधानमंत्री को सलाह दी कि दक्षिण एशिया की परिवर्तन की धारा में उसे भी मिलना चाहिए। परन्तु राणा शासक इस बात को नहीं समझ पाए। उन्होंने सोचा कि भारत, पाकिस्तान और चीन से सुरक्षा के कारण नेपाली राजनीति में हस्तक्षेप कर रहे है।

अप्रेल, 1950 में राणा विरोधी आन्दोलन तब और उग्र हो गया जब नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस और नेपाल प्रजातांत्रिक कांग्रेस ने मिलकर एक दल नेपाली कांग्रेस बनाया। इसने आन्दोलन को और तीक्ष्ण किया। नेपाल नरेश त्रिभुवन का भी राणा विरोधी आन्दोलन को समर्थन था। लेकिन राजमहल में कैद नरेश को जब पता लगा कि उनको मारने की साजिश रची जा रही है तब उन्होने 6, नवम्बर 1950 को अपने परिवार सहित काठमांडू स्थित भारतीय दूतावास में जाकर शरण ली एंव चार दिन बाद एक विशेष विमान द्वारा नरेश एंव उनके परिवार को भारत ले जाया गया।[21] इस घटना ने नेपाली राजनीति में खलबली मचा दी तथा नरेश के भारत जाने के पश्चात नेपाली कांग्रेस ने राणा विरोधी संघर्ष को और गति दी तथा 'मुक्ति सेना' का गठन किया। जिसमें छात्रों व युवाओं ने हिस्सा लिया तथा पूरे राष्ट्र में गुरिल्ला युद्ध की तर्ज पर लूटमार करके जमींदारों एंव भूस्वामियों को लूटा। यही नहीं काठमांडू में भी लोग राणा शासन का विरोध करने के लिए सडकों पर आ गए।

---

[20] Chaturvedi, n. 16, p. 49.
[21] Gupta, n. 13, p. 43.

8,दिसम्बर 1950 को भारत सरकार ने नेपाल सरकार को एक ज्ञापन पत्र सौंपा जिसमें संवैधानिक सुधारों के लिये सुझाव प्रस्तुत किए गए। भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के पांच दिन बाद 'सिंह दरबार' में बैठक हुई जिसमें निर्णय कुछ अलग लिए गए। जिससे नेपाली कांग्रेस एंव भारतीय सरकार सन्तुष्ट नहीं थी। इस बैठक के तुरन्त बाद शासित राणा परिवार के 40 अधिकारियों के इस्तीफे देने से राणा प्रधानमंत्री को विवशतापूर्वक भारत सरकार के प्रस्ताव को अमल में लाना पडा। जिसमें वर्णित था कि नेपाल नरेश त्रिभुवन राजसत्ता संभालेगें, अन्तरिम केबिनेट का गठन होगा जिसमें 14 सदस्य लोकप्रिय चुने हुए प्रतिनिधि होंगे। 8,जनवरी 1951 को भाषण हुए मोहन शमशेर राणा ने सभी बातें मानी एंव नेपाल नरेश व भारत सरकार ने इसका स्वागत किया। 16,जनवरी को नेपाली कांग्रेस ने आंदोलन को पूर्ण विराम दे दिया। फरवरी 1951 में राणा विरोधी आन्दोलन का अन्त हुआ तथा नरेश, राणा शासक एंव नेपाली कांग्रेस के नेताओं के मध्य एक बैठक हुई। एंव भारत की सरकार का प्रभाव भी इस वार्तालाप में रहा। इस सम्पूर्ण प्रकरण को "दिल्ली समझौता" (Delhi Settlement) के नाम से जाना गया। जिसके परिणाम स्वरूप 1951 के अन्तिरम संविधान की स्थापना हुई।[22]

1951 का संविधान

सन् 1951 का साल नेपाल के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में काफी महत्वपूर्ण था क्योंकि त्रिभुवन नरेश और नई निर्वाचित दिल्ली सरकार की मध्स्थता द्वारा एक अन्तरिम संविधान की रचना की गई। जो नेपाल अधिनियम, 1951 के नाम से जाना गया। इस संविधान द्वारा सन् 1846 के बाद पहली बार राणाओं के हाथ से प्रधानमंत्री की सम्पूर्ण शक्तियां छीन ली गई और एक लोकतांत्रिक संविधान की रचना करने के लिए जनता के प्रतिनिधित्व को नेपाल में लाया

[22] R.S. Chauhan, n.9,p.42

गया। सन् 1951 का संविधान एक अन्तरिम संविधान था क्योंकि यह एक संविधान निमार्ण करने का मध्य का समय था इसी कारण इस अन्तरिम संविधान का जोर लोकतांत्रिक जनप्रतिनिधित्व के आधार पर संवैधानिक सभा का निमार्ण करना था जो एक संविधान का निमार्ण करे एवं अन्तरिम संविधान का स्थान ले। इस अन्तरिम संविधान ने मौलिक अधिकारों पर काफी जोर दिया जो नेपाल की जनता के हितों की रक्षा करेगा। अन्तरिम संविधान राष्ट्र के आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक कर्त्तव्यों को भली भांति दर्शाया गया। नरेश ने राणा प्रधानमंत्री की शक्तियों को इस संविधान के जरिए अपने हाथों में ले ली । एक सलाहकारी सभा का गठन किया गया जिसके पास विधायी शक्तियां होगी जिसमें राणा एंव जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होगें वे नरेश को कार्यपालिका शक्ति में सहायता प्रदान करेगें। नरेश ने अध्यादेश जारी करने की शक्ति अपने पास रखी। संविधान में यह कहा गया कि मंत्री अपने पदों पर नरेश के प्रसाद पर्यन्त ही बने रहेगें तथा वे सामूहिक रुप से नरेश के प्रति उत्तरदायी होगें[23] अन्तरिम संविधान में व्यस्थापिका की कोई भूमिका नहीं थी। इस कारण मंत्रिपरिषद इन विधायी शक्तियों के सहारे काफी शक्तिशाली बन गए थे।

अन्तरिम संविधान अन्तरिम होने के कारण स्वंय की महत्वता खो चुका था। क्योंकि अध्यादेशों के द्वारा इस संविधान में लिखे अनुच्छेदों को आसानी से बदला जा सकता था। इस संविधान के प्रथम भाग में वृहद रूप से मौलिक अधिकारों एंव राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन किया गया। काफी हद तक इन्हे भारतीय संविधान से उधार लिया गया। मौलिक अधिकारों में विशेषतः नागरिको को वचन एंव अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संघ एंव संगठन बनाने की स्वतंत्रता तथा निजी सम्पत्ति का अधिकार इत्यादि प्रदान किये गये। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में यह कहा गया कि राज्य कल्याणकारी कार्यो द्वारा

---

[23] S.D. Muni, "Political Change: A Framework of Analysis" ,in S.D. Muni (ed.), *Nepal: An Assertive Monarchy*, (Chetana Publications, New Delhi, 1977). p. 52.

जनता के सामाजिक, आर्थिक एंव राजनैतिक न्याय को संरक्षित करेगा। परन्तु उन्हे लागू करने का कोई ठोस तरीका नही बतलाया गया।[24] सन् 1951 का संविधान 1959 तक तीन बार संशोधित हुआ और इन संशोधनों द्वारा संविधान का मूल आधार ही परिवर्तित हो गया। नीति निर्देशक तत्व इन संशोधनों से लगभग महत्वहीन से हो गए। सन् 1951 के पश्चात से ही राजनीतिक अस्थिरता के कारण राणाओं की शक्ति का घटना, नेपाली कांग्रेस पार्टी का विखंडन होना और नेपाली जनता की मांगों के परिणाम स्वरूप इस संविधान में संशोधन आए। अप्रेल,1952 में प्रथम संशोधन में नरेश ने सलाहकारी सभा को गठित करने की शक्ति अपने हाथों में ले ली तथा सभा की शक्तियों को घटा दिया। कार्यालय तौर पर नेपाली कांग्रेस जुलाई, 1952 में विखण्डित हो गई।[25] सितम्बर, 1952 में एक अधिनियम पास किया गया जो ' विशेष आपातकाल अधिनियम, 2009 विक्रमी संवत ' कहा गया।[26] यह अधिनियम सन् 1951 के अन्तरिम संविधान की आत्मा के ही विपरीत था। क्योंकि सलाहकारी सभा की जो भूमिका थी वह सम्पूर्ण तरीके से ध्वस्त कर दी गई। तीसरा संशोधन 1954 में आया जिसमें प्रधान न्यायालय की शक्तियों को घटाया गया। इस संशोधन को ' अन्तरिम सरकार का नेपाल अधिनियम, 1954 ' कहा गया।[27] इस संशोधन के बाद नेपाली राजनीति में नरेश की असीमता का दौर प्रारंभ हुआ। जिस कारण अन्तरिम संविधान पर कम एंव नरेश की इच्छाओं पर ज्यादा ध्यान दिया गया। सन् 1955 के बाद नरेश ने क्रमानुसार सरकारो को गिराया और बनाया। नरेश का बार–बार सरकार गिराने का कारण यह था कि राजनीतिक दल संवैधानिक सभा द्वारा नये संविधान का निर्माण न कर पायें।

सन् 1955 के प्रारम्भ से ही नरेश त्रिभुवन का स्वास्थ्य गिरने लगा एंव राजकुमार महेन्द्र की शक्तियां बढने लगी। मार्च, 1955 में नरेश त्रिभुवन की

---

[24] Joshi and Rose,n. 8, p. 150.
[25] Ibid, p. 74.
[26] Ibid. p. 76.
[27] Ibid, p. 154.

मृत्यु के पश्चात महेन्द्र ने सत्ता सभांली।[28] नरेश महेन्द्र ने जो प्रमुख कदम उठाये वे थे उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता स्थापित करना, न्यायपालिका एंव कार्यपालिका का पृथक्करण करना, भूमि सुधार लाना, बेगार प्रथा को बंद करना आदि। इस समयावधि के दौरान काफी सरकारें इस आधार पर आ रही थी कि वे चुनाव द्वारा एक संवैधानिक सभा का गठन करेगें। लेकिन इसी आधार को लेकर नरेश काफी बार सरकार बदलते गए। 26, जुलाई 1957 को नरेश ने के. आई. सिंह को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया। के. आई. सिंह एक ऐसे राजनीतिक दल के नेता थे जो नेपाली राजनीति में मुख्य भूमिका नहीं निभाता था। इस कारण नरेश और के. आई. सिंह के विरुद्ध सारे राजनीतिक दल और सामाजिक दल एकजुट हो गए। सन् 1957 में जनारोष को दबाने के लिये नरेश ने के. आई. सिंह की सरकार को बर्खास्त कर दिया। इस के दौरान राजतंत्र विराधी गतिविधियों और राजनीतिक दबाव आदि को शांत करने के लिए नरेश ने 18, फरवरी 1959 को संवैधानिक सभा गठित करने के लिये चुनाव की घोषणा की जिसमें द्विसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना होगी।

1959 का संविधान

15, मई 1958 को नरेश की देखरेख में एक अन्तरिम सरकार का गठन किया गया। जो संविधान और संवैधानिक सभा के चुनाव में सहायता करेगा। इसी समय में अन्तरिम सरकार और नरेश नें एक संवैधानिक आयोग की रचना की। इस आयोग में अन्य सदस्य थे, रामाराज पंत, होराप्रसाद जोशी, एस. पी. उपाध्याय और रणधीर सुब्बा।[29] लगभग दस वर्ष के इतंजाार के बाद 13, फरवरी 1959 में संविधान को प्रस्तुत किया गया और दूसरे ही दिन एक शाही घोषणा के द्वारा उसे लागू किया गया। यह संविधान 77 अनुच्छेद तथा 10 भागों में विभक्त था। जो सम्प्रभुता का प्रश्न नेपाल की जनता के समक्ष खडा

---

[28] Rishikesh Shaha, *Three Decades and Two Kings (1960 – 1990): Eclipse of Nepal's Partyless Monarchic Rule* (New Delhi: Sterling Publishers, 1990), p. 1.

[29] R.S.Chauhan, n. 9, p. 99.

था इस संविधान ने सम्प्रभुता जनता में निहित कर इस प्रश्न को समाप्त कर दिया।[30] यह संविधान चार मुख्य बातें लिये हुए था, राष्ट्र एंव जनता के मध्य एकता, समृद्धि, उन्नति को स्थापित करना एंव यह संविधान राष्ट्र का सम्मान, सुरक्षा कायम रखने के लिए वचनबद्ध था।[31] सन् 1951 के संविधान के समान ही इस संविधान में भी मौलिक अधिकारों के ऊपर जोर दिया गया। सन् 1959 का संविधान संसदीय लोकतंत्र लाने का प्रयास था।

इस संविधान में कार्यपालिका की संरचना में एक मंत्रिमंडल का प्रावधान रखा गया, जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करेंगें एंव इन सभी के ऊपर संवैधानिक नेतृत्व नरेश प्रदान करेगें। नरेश के पास दो तरह की शक्तियां रही, मनोनीत करने की और विवेकसम्मत निर्णय लेने की शक्ति एंव आपातकालीन शक्तियां भी नरेश के पास ही रही। नरेश प्रधानमंत्री को तभी बर्खास्त कर पाऐंगें जब वह किसी असंवैधानिक कार्य में हो या संसद के निचले सदन में बहुमत खो दे। उच्च न्यायालय को इस संविधान में काफी उच्च स्थान दिया गया। इस संविधान में व्यवस्थापिका को दो सदनों में बांटा गया, महासभा या ऊपरी सदन और प्रतिनिधि सभा या निचला सदन। प्रतिनिधि सभा में 109 सदस्य होगें और महासभा में 36 सदस्य होगें। जो प्रतिनिधि सभा का स्पीकर होगा वह इस सदन का सदस्य ना भी हो सकता है।[32] 1959 के संविधान को प्रारुप समिति और राजमहल से स्वीकृति प्राप्त थी और दोनों ने ही अपने – अपने मतानुसार इस संविधान में परिवर्तन किए। इस संविधान में नरेश को शक्ति प्रमुख के रुप में देखा गया तथा ज्ञान का देवता माना गया।[33] इस संविधान ने देश को एक कल्याणकारी राज्य के रुप में देखा। जिस कारण मौलिक अधिकारों के ऊपर ज्यादा जोर दिया गया। अनुच्छेद 6 में संविधान ने सम्पत्तियों के अधिकार के बारे में कहा गया। इस अनुच्छेद के द्वारा यह कहा गया कि सरकार किसी

---

30 Gupta, n. 13, p. 128.

31 Chaturvedi, n.16, p. 80.

32 Shastra Dutta Pant, *Comparative Constitutions of Nepal* ,Sirud Publications, Kathmandu, 2001, p.107

33 Paramanand, *The NepaliCongress and its Inception,* New Delhi, B.R. Publishing Corporation, 1982, p.201

निजी सम्पत्ति को अपने अधीन नहीं ले सकता। जनता के मन में जो डर पैदा हो चुका था कि सरकार कभी भी बीरता, गुठठी और बडे भू–स्वामियों की जमीनों को छीन सकती है। इस संविधान के अनुच्छेद 6 ने इस भय को खत्म कर दिया। उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को संरक्षित करता था।

परन्तु यह संविधान प्रधानमंत्री की भूमिका और स्थिति को काफी कम कर देता है। उसे एक सामान्य नागरिक का दर्जा इस संविधान में दिया गया। यदि प्रधानमंत्री नरेश से कोई सिफारिश करता है तो नरेश उस सिफारिश को ठुकरा सकते है जिससे प्रधानमंत्री को इस्तीफा देना पडेगा अन्यथा उस सिफारिश को प्रधानमंत्री को वापस लेकर नरेश से क्षमा मांगनी पडेगीं। नरेश को यह भी शक्ति थी कि वह किसी भी व्यक्ति को प्रधानमंत्री के रुप में चुन सकते है चाहे वह प्रतिनिधि सभा का सदस्य ना हो। संशोधन का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 53 में बतलाया गया है परन्तु अन्तिम निर्णायक नरेश ही होगा। संविधान में यह भी उल्लेखित है कि इसे चुनौती नहीं दी जा सकती।[34]

सन् 1959 के संविधान के घोषित होने के एक माह पश्चात ही राष्ट्रीय चुनाव हुए। तथा चुनाव प्रचार के दौरान सरकार की शक्तियों, नरेश की शक्तियां तथा नेपाल की राजनीति का नया चेहरा जो कि 1959 का संविधान ला रहा था उसे राजनीतिक दल नहीं समझ पाए। इस प्रकार नेपाल के इतिहास में प्रथम बार राष्ट्रीय चुनाव 18, फरवरी से 3, अप्रेल 1959 तक हुए। 3, अप्रेल को चुनाव के परिणाम आए जिसमें स्पष्ट हुआ कि नेपाली कांग्रेस प्रतिनिधि सभा में बहुमत के आधार पर सरकार का गठन कर सकेगी। बी. पी. कोईराला के नेतृत्व में सरकार बनी। यह सरकार पिछले 9 सालों में आकार की दृष्टि से सबसे बडी सरकार थी।[35] परन्तु बी. पी. कोईराला के मंत्रिमंडल में पहले से ही मतभेद था जिस कारण सरकार के अंदर एकता का अभाव था। तुलसी गिरि जो कि केबिनेट में उपविदेश मंत्री थे, उनके सरकार विरोधी बयान एंव अव्यवहारिक तरीकों ने सरकार को अस्थिरता व विखण्डता की तरफ

---

[34] Gupta, n.13,p.136

[35] Joshi and Rose, n. 13, p. 313.

बढाया।[36] गिरि ने अगस्त, 1960 में इस्तीफा दे दिया तथा इसके पश्चात उन्होंने सरकार की जमकर भर्त्सना की।

कोईराला सरकार की कुछ असफलताएं रही वे इस प्रकार है जैसे नेपाली कांग्रेस ने सत्ता में आने से पूर्व भूमि सुधार की बात की जिसके अर्न्तगत बीरता की समाप्ति की बात की गई। परन्तु सरकार गठित होने के बाद नए संविधानानुसार इस सुधार को नहीं ला पाया एंव बीरता को समाप्त करने में नरेश ने भी रुकावटें पैदा की। सरकार के अंदर गुट पैदा हो जाने के कारण कोई भी कानून लागू होनें से पहले ही विवादों में घिर जाता था। जिस कारण सरकार अपने कार्यो को सही प्रकार से संचालित नहीं कर पा रही थी। वामपंथी दल ने सरकार के ऊपर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया। तथा इस पार्टी ने प्रधानमंत्री और केबिनेट मंत्रालय से निजी सम्पत्ति की सूची प्रस्तुत करने की मांग की। इसके अतिरिक्त नरेश ने केबिनेट और प्रधानमंत्री से कोई सलाह न लेकर सेना की तनख्वाह में वृद्धि कर दी। बी. पी. कोईराला के प्रस्तावों को नरेश ने उसके सम्मुख तो माना परन्तु उनके पीछे से उन्हें नकार दिया।[37] जिसके कारण नरेश एंव प्रधानमंत्री में मतभेद उत्पन्न होने लगे।

महेन्द्र के आकस्मिक तरीके से 15,दिसम्बर 1960 में नरेश के आदेश से सरकार को बर्खास्त कर दिया गया और बी. पी. कोईराला एंव उनके समस्त केबिनेट को गिरफ्तार करने का आदेश जारी किया। उनके ऊपर जो दोषारोपण किए गए वे इस प्रकार थे– 1. राजनीतिक दल के हित के लिए उन्होंने देश व जनता के हितों को बलि चढा दिया। 2. देश के कानूनों को न मानते हुए उन्होंने प्रशासनिक संरचना को पंगु बना दिया। 3. भ्रष्टाचार के तौर तरीके अपनाए। 4. कानून और व्यवस्था को बनाए रखने में असर्मथता। 5. सरकार के कदम अव्यवहारिक होने के कारण अस्थिरता आ गई। 6. देशद्रोहिता की भावनाओं को बढावा देना।

---

[36] Ibid. p. 315.
[37] Parmanand, n. 32, p. 257.

सामान्य चुनावों में विजयी कोईराला सरकार को बर्खास्त करने के बाद नरेश महेन्द्र को कुछ ऐसा प्रदर्शित करना पडा जिससे उनके इस कृत्य को संवैधानिक रुप दिया जा सके। सन् 1959 के संविधान के अनुच्छेद 55 का प्रयोग करके नरेश ने एक सलाहकारी परिषद का गठन किया जिसमें नेपाली कांग्रेस से बहिष्कृत नेताओं को चुना गया। नरेश की शक्तियों में वृद्धि करना एंव राजनीतिक दलों के कार्यों को असंवैधानिक घोषित करना इस सलाहकारी परिषद का उददेश्य था। ऐसे हालात में जनारोष होना सामान्य सी बात थी जो कि राष्ट्र के प्रत्येक भाग में नजर आने लगा।[38] सन् 1961 के समय जो वृहद पैमाने पर आन्दोलन प्रारंभ हुआ जो कि त्रिभुवन विश्वविधालय के छात्रों द्वारा किया गया। जितने भी विद्रोह नजर आए उन्हें कडे तरीके से नरेश एवं उनकी सरकार ने दबाने की कोशिश की। जिसमें काफी सख्या में लोग मारे गये। नरेश ने ये सारे आरोप नेपाली कांग्रेस पर लगा दिये जो कि उस समय प्रतिबंधित राजनीतिक दल था। इस समय यह विचार किया गया कि ऐसे संविधान की रचना की जाये जिसमें राजनीतिक दल नही होगें तथा लोकतंत्र की जडें गांवों से प्रारंभ हो। इसके फलस्वरुप ही सन् 1962 का संविधान अस्तित्व में आया जो राजनीतिक दल विहीन पंचायती लोकतंत्र पर आधारित था।[39]

सन् 1960 में शासन का तख्ता पलटने के बाद नरेश महेन्द्र ने सरकार को अपने हाथों में ले लिया। उन्होंने नेपाली कांग्रेस को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण संविधान को जो एक संसदीय लोकतंत्र पर आधारित था उसकी भी आलोचना की। नरेश ने कहा कि पश्चिमी आधारों पर बना लोकतंत्र नेपाल के राजनैतिक संस्कृति, इतिहास और जनता के अधिकारों की रक्षा करने में पूरी तरह असमर्थ है। जिस कारण नेपाल में ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की जरुरत है जो नेपाल के लिये ही बनी हो।[40] तख्ता पलटने के कुछ ही समय के अन्तराल बाद नरेश

---

38 Chauhan, n.9,p.171
39 Ibid,pp.177-190
40 Joshi and Rose, n. 13, p. 395.

ने एक समिति को गठित किया। जो युगोस्लाविया, मिश्र, पाकिस्तान और इंडोनेशिया की राजनीतिक संस्कृति और व्यवस्था का अध्ययन करके एक नये नेपाली राजनीतिक व्यवस्था की स्थापपना कर सकें। एक वर्ष पश्चात एक अन्य समिति का गठन किया गया जो कि एक और नये संविधान का निर्माण करेगा।

1962 का संविधान

सन् 1962 का संविधान काफी देशों की राजनीतिक संस्कृति और संविधानों का मिश्रण था। मिश्र और इंडोनेशिया की "National Guidance", पाकिस्तान की "Basic Democracy"की व्यवस्था, मिश्र और युगोस्लाविया की "Class Organization" की व्यवस्था और भारत की बहुराज्यों में प्रचलित पंचायत की व्यवस्था इत्यादि के सम्मिश्रणों से 1962 के पंचायती लोकतंत्र का जन्म हुआ।[41]

इस नवीन संविधान में सम्प्रभुता नरेश में निहित की गई। और कार्यपालिका, व्यवस्थापिका व न्यायपालिका की शक्तियों का स्रोत भी नरेश ही था। संविधानानुसार, नरेश का आदेश सर्वोपरि था एंव वह कानून के ऊपर थे। एक सदनीय व्यवस्थापिका की रचना की गई जो कि राष्ट्रीय पंचायत के नाम से जानी गई। इस सदन में 125 सदस्य थे, जिसमें 14 अंचलो से 90 सदस्यों का चुनाव होगा। इसमें 15 सदस्य 5 वर्ग सगंठनों से चुने जाएगें। 4 सदस्य [Graduate Constituency] ग्रेजुएट निर्वाचन क्षेत्र से चुने जाएगें तथा 16 सदस्यों को नरेश स्वंय मनोनीत करेगें।[42] संविधान में एक राज सभा की भी चर्चा की गई जो कि नरेश को सलाह देने का कार्य करेगी। तथा इसके अतिरिक्त यह परिषद नरेश की अनुपस्थिति में या उनके मानसिक एंव दैहिक रुप से अस्वस्थ होने एंव उनकी मृत्यु हो जाने पर यह परिषद उनके नाम पर

---

[41] Ibid. p. 396.
[42] Chaturvedi, n. 16, pp. 251 – 261.

सलाहकार के रुप में सरकार को चलायेगी। परंतु इस परिषद के पास व्यवस्थापिका शक्तियां न होने के कारण यह संसद एकसदनीय ही रही। न्यायिक व्यवस्था का प्रवाह निम्न से उच्च की तरफ था। लेकिन फिर भी न्याय का मूल आधार नरेश ही था। यह पचांयत व्यवस्था चार स्तरों में बंटी हुई थी, जिसमें प्रथम गांव व नगर पचांयत थे, इसके बाद जिला, अचंल एंव राष्ट्र स्तर पर पचांयतें विभक्त थी। यह नरेश द्वारा शक्ति का विकेन्द्रीकरण करने का प्रयास था। इस संविधान में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किए गए जो कि न्यायालय द्वारा संरक्षित थे। अनुच्छेद 82 में इस संविधान के संशोधन के बारे में कहा गया। संविधान संशोधन करने के लिये एक विशेष समिति बनाई जाएगी जिसमें राज परिषद [राज़ सभा] तथा राष्ट्रीय पचांयत के चुने हुए सदस्य शामिल होगें। तथा उनकी सलाह के अनुग्रह से ही नरेश निणर्य लेगें। नरेश का लिया गया कोई भी संशोधन विचाराधीन नहीं होगा तथा संशोधन संविधान का अभिन्न अंग होगा। तथा नरेश में सम्पूर्ण आपातकालीन शक्तियां भी निहित होगीं। इसके अलावा नरेश सेनाओं के भी सर्वोच्च थे जिस कारण वे देश में सर्वशक्तिमान के रुप में जाने जाते थे। अतः यह कहा जा सकता है कि यह संविधान नरेश की शक्तियों को औचित्य देने का एक ठोस प्रयास था।

राजनैतिक दलों और संसदीय सस्थाओं को 1962 के संविधान द्वारा हटा देने के कारण नरेश महेन्द्र को चुनौती देने लायक कोई भी शक्ति नेपाल में नहीं रही।[43] शक्ति के एकत्रीकरण का जो प्रयास सन् 1956 से प्रारंभ हुआ वह 1962 के संविधान द्वारा नरेश महेन्द्र को प्राप्त हुआ। राजनीतिक शक्ति एकत्रीकरण करते समय नरेश महेन्द्र ने पाया कि विश्व के राजनीतिक परिदृश्य में इस कृत्य को अच्छी नजर से नहीं देखा जा रहा है। इसी कारण 1962 के संविधान घोषित होने के एक सप्ताह के अदंर ही नरेश ने स्वंय के प्रतिनिधियों को भारत के प्रधानमंत्री प. जवाहरलाल नेहरु के पास भेजा। नेहरुजी इस सत्ता हस्तांतरण के पक्ष में नहीं थे अतः उनको यह विश्वास दिलाने का प्रयास

---

[43] Chauhan, n. 9, p. 195.

किया गया कि यह संविधान जनहित में बनाया जाएगा और नेपाल के सर्वांगीण विकास के लिये यह जरुरी है। नरेश महेन्द्र स्वंय सयुंक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैण्ड गए और वहां उन्होंने नेपाल की राजनीतिक आवाज के बारे में एक विश्वास प्राप्त करने कोशिश की। पंचायती लोकतंत्र की अवधारणा एक राष्ट्र के लिए लाभप्रद हो सकती है लेकिन जिस देश में राजनीतिक चेतना, अशिक्षा, गरीबी जैसी सामाजिक व्याधियां परिपक्व रुप से देश में निवास करती है उस राष्ट्र में पचांयती लोकतंत्र देश को भयानक मोड पर ला सकती है। इस समय के दौरान कम्यूनिस्ट दल की सहायता से संजातीय समूहों में अशांति एंव असन्तोष उत्पन्न होने लगा। इस अशांति के कारण काठमांडू की राजनीतिक व्यवस्था के ऊपर भी असर आया। जिससे संविधान में संशोधन की बात आने लगी। सन् 1962 के संविधान में तीन संशोधन हुए थे, पहला संशोधन 1967 में किया गया। 1967 के संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 11 के भाग 2 में वाक स्वतंत्रता , अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि सम्मिलित थे उसमें यह राजनीतिक दलों के प्रतिबंध को जोडा गया। आंचलिक सभा की शुरुआत भी इसी संशोधन के बाद हुई। राष्ट्रीय पचांयत के सदस्यों की योग्यता के बारे में संशोधन हुए। एंव प्रधानमंत्री का पद भी इसी समय में आया।[44]

प्रथम संशोधन होने के उपरान्त भी देश में शान्ति नहीं आई। सबसे ज्यादा विद्रोह संजातीय धारा में नजर आया, भाषा आन्दोलन जैसे विद्रोह पश्चिमी तराई अंचल नजर आए। जिन राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध लगाए हुए थे उन दलों के नेता ग्रेजुएट निर्वाचिकाओं द्वारा राष्ट्रीय पचांयत पर असर डालने लगे। 1967 में नरेश महेन्द्र का पूर्व निर्धारित विचार [Back to the Village National Campaign] 'गांव चलो अभियान' को कोई महत्व नहीं दिया गया क्योंकि यह संविधान के बाहर का अंग था। इस बीच नरेश महेन्द्र की तबियत खराब होने से देश की राजनीति पर भी असर पडने लगा तथा वहीं दूसरी ओर अवैध राजनीतिक दलों द्वारा पुनः संवैधानिक संशोधन की

[44] Chaturvedi, n. 16, pp. 237 – 282.

मांग की जाने लगी। नरेश वीरेन्द्र के सत्ता में आने के बाद उन्होंने भी महसूस किया कि संविधान में संशोधन की आवश्यकता है। जिस कारण सन् 1975 में दूसरा संशोधन लाया गया। इस संशोधन में 'वापस गांवों की ओर' को संवैधानिक रुप दे दिया गया। इस संवैधानिक अंग को पॉलिट ब्यूरो की शक्ति दी गई। जो कि पचांयत में हुए चुनाव और अन्य हितों की देखरेख करेगी। ग्रेजुएट निर्वाचिका और चारों स्तरों के चुनावों में भ्रष्टाचार बढने लगा था अतः नरेश वीरेन्द्र ने पॉलिट ब्यूरो के जरिए इस पर नियंत्रण पाने की कोशिश की।

राष्ट्रीय पचांयत को इस संशोधन के द्वारा और शक्तिशाली बनाया गया। पहले ज्यादातर चेयरमैन या जो बाद में प्रधानमंत्री का पद बना, उन्हें नरेश के प्रसाद पर्यन्त ही अपने पद पर रहना पडता था। लेकिन इस संशोधन द्वारा राष्ट्रीय पचांयत के सदस्यों को प्रधानमंत्री व मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने की शक्ति मिली। राष्ट्रीय पचांयत के सदस्यों की सख्या में वृद्धि हुई। जिन संजातीय समूहों के मध्य विद्रोह उठ रहे थे, उन्हें शांत करने के लिए यह कहा गया कि नेपाल के अंदर रहने वाले नेपाली पहले है बाद में संजातीय है। राष्ट्रीय पचांयत में जो सदस्य ग्रेजुएट निर्वाचिका एंव वर्ग संगठनों से आते थे उन्हें भी बंद कर दिया।

TH-11449

इन संशोधनों के द्वारा जनता शांत नहीं बल्कि विक्षुप्त हो गई। विशेषतः वर्ग संगठनों के प्रतिनिधियों को राष्ट्रीय पचांयत में न भेजने के कारण संजातीय समूहों की आवाज को दबा दिया गया जो कि सरकार तक पहुंचती थी। देश की अर्थव्यवस्था की हालत काफी बेकार हो रही थी, अकाल पडने एंव खाद्य सामग्री की कमी ने जनता की हालत कमजोर कर दी। भारत के साथ भी नेपाल सरकार अच्छा रिश्ता बनाने में नाकामयाब रहीं, जिससे राष्ट्र में वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने लगी। जो भी प्रधानमंत्री इस समय आए वे कठपूतली की तरह नरेश एंव नरेश की सलाहकारी परिषद के इशारों पर नाचते रहे। प्रधानमंत्री शक्ति का एकत्रीकरण न कर पाए इस कारण इस समय के दौरान काफी प्रधानमंत्री बने और कुछ ही समय में इस्तीफा देकर या फिर गुहबंदी बने

Jawaharlal Nehru University Library

या वापस साधारण नागरिक की स्थिति में रहे। इस अस्थिर और नाजुक राजनीतिक अवस्था में तीसरा संशोधन 1980 में आया। उससे पहले नरेश वीरेन्द्र ने 28, मई 1979 में [B.V.N.C.] 'वापस गांवो की ओर' को निरस्त कर दिया। तथा देश में जनमत संग्रह करवाने के लिए 15 सदस्यीय चुनाव आयोग का गठन किया। 2, मई 1980 में जनमत संग्रह हुआ जिसमें 54.7 प्रतिशत मत संशोधित पंचायती व्यवस्था को मिले तथा 45.21 प्रतिशत मत बहुदलीय व्यवस्था को मिले।[45] इस जनमत संग्रह के पश्चात तीसरा संशोधन 15, दिसम्बर 1980 में लाया गया।[46] राष्ट्रीय पचांयत की सदस्य संख्या 140 कर दी गई। जिसमें 28 सदस्य नरेश द्वारा मनोनीत होगें। प्रधानमंत्री के चुनाव के तरीके में भी परिवर्तन आया। प्रशासनिक मामलों में नरेश की शक्तियों में वृद्धि हुई, तथा पचांयतों की जाचं व परीक्षण भी नरेश के निरीक्षण में ही होगी। राज परिषद कानून का निर्माण करेगी एंव नरेश द्वारा पारित होने के पश्चात उस कानून को न्यायपालिका में भी चुनौती नहीं दी जा सकती। इस प्रकार राज परिषद राष्ट्रीय पचांयत से भी अधिक शक्तिशाली हो गई। इस संशोधन में यह भी घोषित किया गया कि नेपाल को शांति के क्षेत्र के रुप में जाना जाएगा। जो कि बाद में नेपाल की विदेश नीति का आधार बना। अन्ततः संविधान में संशोधन की शक्ति नरेश के हाथों में ही रही।[47]

उपरोक्त संविधानों के विभिन्नीकरण में मैक्स वेबर के संवैधानिक सिद्धान्त की छवि स्पष्ट नजर आती है। नेपाल का सन् 1948 का संविधान वेबर के परम्परागत मॉडल पर परखा जा सकता है। जहां पर परम्पराओं, रुढियों प्रथाओं को ध्यान में रखते हुए एक ऐसा संकीर्ण संविधान लाया जाता है जो सरकार के ढांचे को न बदलते हुए उदारवादी लोकतंत्र की स्थापना को प्रदर्शित करने की कोशिश करता है। 1951 व1959 के संविधान प्रमुखतया वेबर के दूसरे मॉडल कानून तर्कशील का आभास देता है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि

---

[45] Rishikesh Shaha, *Essays in the Practice of government in Nepal,* Manohar Publishing House, New Delhi, 1982, p. 159.
[46] Ibid. p. 131.
[47] Ibid. pp. 131 – 132.

सिद्धान्त का धरातल तक आना मुश्किल है और वह भी विकासशील देशों में जंहा शक्तिशाली राजतंत्र हो वंहा उदारवादी लोकतंत्र की स्थापना का आभास संवैधानिक विकास को प्रकट करता है। सन् 1951 का संविधान इस उदार लोकतंत्र की स्थापना करता है जो अन्त में सन् 1959 में सामान्य चुनाव लाकर अपनी सफलता प्रदर्शित करता है। सन् 1980 का जनमत संग्रह नेपाल की राजनीति में जनता को शासन चुनने की स्वतंत्रता देता है। जिसके अन्तर्गत पंचायती व्यवस्था या बहुदलीय व्यवस्था में से एक को चुनना था। मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्व, संसद की महत्वता, सरकार के अंगो की पहचान इत्यादि पहलू कानूनन तर्कशील मॉडल के नजदीक होने का आभास देते है। लेकिन जब कोई नेता या एक व्यक्ति या एक समूह स्वय के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बहुमत प्राप्त सरकार व प्रधानमंत्री को सत्ता से हटा देता है तथा नये संविधान की रचना करता है जिसमें स्वय की शक्तियों पर कोई खतरा न आए बल्कि वृद्धि हो। इस प्रकार एक व्यक्ति के चरित्र, इच्छा, व्यक्तित्व एंव करिश्मे का पता चलता है जो कि वेबर का तीसरा मॉडल, करिश्माई मॉडल है। सन् 1990 का संविधान नेपाल के लिए एक नया इतिहास लाता है। जंहा पर पहली बार नेपाल की जनता राजनीति में मुख्य भूमिका अदा करती है। अतः यह संविधान जनता का संविधान कहा जाता है जो वेबर के दूसरे मॉडल को पुनः प्रदर्शित करता है।

निष्कर्षतः-

संविधानवाद की अवधारणा का आगमन नेपाल में सन् 1948 से हुआ। 1940 के दशक में दक्षिणी एशियाई क्षेत्र में लोकतंत्र की हवाओं का आगमन प्रारम्भ होने लगा था। नेपाल के पडौसी राष्ट्र भारत में भी जनतंत्र को स्थापित करने का दौर चल रहा था। जिसका प्रभाव नेपाल की राजनीति पर पडने लगा। इस लोकतंत्र की हवाओं से नेपाल के राणाओं के सामन्ती शासन के समक्ष काफी समस्याएं आने लगी। लोकतांत्रिक शक्तियो के दबाव के कारण

अन्ततः नेपाली प्रधानमंत्री पद्म शमशेर राणा ने सन् 1948 में नेपाल के प्रथम संविधान की घोषणा की। यह नेपाल में लोकतांत्रिकरण की दिशा में प्रथम प्रयास था। परन्तु यह संविधान जनता के अधिकारों को नही वरन राणाओं के शासन को सुरक्षित करता है। अतः जनता एंव नवगठित दलों के द्वारा राणातंत्र के विरोध में आन्दोलन प्रारम्भ किया गया।

सन् 1951 में नरेश, राणा शासक एंव नेपाली कांग्रेस के मध्य एक महत्वपूर्ण वार्तालाप हुई जिसके फलस्वपरूप राणातंत्र का अन्त हुआ एंव नये संविधान की स्थापना हुई। इस नये संविधान द्वारा संवैधानिक राजतंत्र का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस नये संविधान में लोकतांत्रिक प्रतिनिधियों को महत्व दिया गया एंव जनता के मौलिक अधिकारों पर भी जोर दिया गया। सन् 1955 में नरेश त्रिभुवन की मृत्यु के पश्चात नरेश महेन्द्र सत्ता में आये। उन्होने लोकतंत्र को कम राजतंत्र को अधिक महत्व दिया। सन् 1959 में संसदीय लोकतंत्र लाने के प्रयास में पुनः एक नवीन संविधान का गठन किया गया। परन्तु यह संविधान अधिक समय तक नही टिक पाया। सन् 1959 में नेपाल में प्रथम बार लोकतांत्रिक चुनाव हुए जिनके परिणामस्वरूप बहुमत दल के नेता बिश्वेश्वर प्रसाद कोईराला देश के प्रधानमंत्री बने। परन्तु नरेश महेन्द्र ने कोईराला सरकार को भ्रष्टाचार के आरोप में बर्खास्त कर दिया। एंव दिसम्बर, 1960 में शासन व्यवस्था सम्पूर्णतया अपने हाथों में ले ली। जिससे यह सिद्ध होता है कि राजनीतिक दलों की अक्षमता एंव राजतंत्र के शक्तिशाली होने से लोकतंत्र को स्थायित्व मिल पाना कठिन है। सन् 1962 में नरेश महेन्द्र द्वारा एक नये संविधान की रचना की गई जो कि दलविहीन पंचायती लोकतंत्र के नाम से जाना गया। इस संविधान में सम्प्रभुता नरेश में निहित की गई एंव राजनीतिक दलों के ऊपर पूर्ण रूप से प्रतिबंध लगाया गया। इस प्रकार नेपाल में निरकुंश राजतंत्र का उदय हुआ। पचायती शासन व्यवस्था के दौरान यद्यपि तीन बार संविधान में संशोधन हुए परन्तु ये संशोधन कोई आधारभूत परिवर्तन नही ला सके, जिससे लोकतंत्र का आगमन हो। पंचायती शासन के दौर में जनता के

अन्दर शासन के प्रति रोष को देखते हुए एक जनमत संग्रह करवाया गया। जिसके माध्यम से पंचायती व्यवस्था व बहुदलीय लोकतंत्र में से एक को चुनना था। पंचायती शासन व्यस्था के तीस वर्षो दौरान जनता में शासन के विरूद्ध आक्रोश निरन्तर बढता गया। जो कि अन्ततः वर्ष 1990 में जन आन्दोलन के रूप में उभरकर सामने आया। इस जन आन्दोलन में सभी प्रतिबंधित राजनीतिक दलों एंव भारी मात्रा में जनता ने भाग लिया। तथा नरेश को एक उदार लोकतंत्र की स्थापना के लिये विवश कर दिया। इस प्रकार 1990 में एक नवीन संविधान की रचना हुई जिसके अर्न्तगत संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की गई। इस संविधान में सम्प्रभुता नरेश में निहित न करके जनता में निहित की गई एंव मौलिक अधिकारों व राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की विस्तृत व्याख्या भी की गई। राजनीतिक दलो को पुर्नबहाल किया गया जो कि लोकतंत्र के आधार है। इस प्रकार 1990 के संविधान में लोकतंत्र के सभी तत्वों का समावेश किया गया। जिस कारण यह संविधान विगत संविधानों से विशिष्ट बन जाता है।

अध्याय 2

1990 के संविधान की प्रकृति (राजनीतिक संदर्भ में)

संवैधानिक विकास एक सतत प्रक्रिया है जो किसी भी देश के राजनीतिक विकास के साथ आगे बढती रहती है। नेपाल राष्ट्र का संवैधानिक विकास काफी उतार चढावों से गुजर रहा है। नरेश महेन्द्र द्वारा 1962 में दिया गया संविधान पंचायत प्रजातंत्र पर आधारित था। इस प्रजातंत्र के स्वरुप को स्थापित करने के पीछे यह तर्क दिया गया कि नेपाल की विषम परिस्थितियों, भौगोलिक अवस्थिति, आर्थिक स्थिति आदि को मद्देनजर रखकर यह स्वीकार किया गया कि यहां पर पश्चिम के प्रजातंत्र को अपनाना उपयुक्त कदम नहीं होगा। इस तर्क के पीछे नागरिकों की भावना नहीं अपितु एकाधिकारवादी राजतंत्र था। पंचायत संविधान नेपाल की जनता पर आरोपित संवैधानिक व्यवस्था थी। इस संवैधानिक व्यवस्था ने देश की पुरानी परम्पराओं के अनुसार दलविहीन पंचायतों पर आधारित एक नये प्रकार के लोकतंत्र की स्थापना की परन्तु कुछ ही समय बाद यह स्पष्ट हो गया कि यह लोकतंत्र का दिखावा मात्र है तथा वास्तव में यह राजतंत्र का ही एक मुखौटा था। अतः इसने लोकतंत्र की आत्मा को ही मृत कर दिया है। अतः नेपाली कांग्रेस एंव अन्य दलों ने इसके लिये काफी असंतोष प्रकट किया एंव अपने स्तर पर विरोध करना प्रारंभ किया।

पंचायत व्यवस्था के सम्पूर्ण काल में शासन का विरोध होता रहा जिसमें मुख्य कारण थे, अर्थव्यवस्था का गिरता स्तर, बढता हुआ भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद इत्यादि। पंचायत व्यवस्था के दौरान एक और चीज बढी कि भ्रष्टाचार शहर छोडकर गांव के स्तर पर उतर आया। पंचायत व्यवस्था में शक्ति प्रवाह निम्नतर से उच्चतर की ओर था जिस कारण स्नातक निर्वाचिकाओं के द्वारा स्थानीय निजी सरकार चलाने के दौरान जो भ्रष्टाचार का

बीज रोपा गया जिसने जनता के मध्य एक अविश्वास एंव असहयोग की भावना पैदा की। परन्तु 1980 के बाद नेपाल की राजनीतिक अस्थिरता प्रकट होने लगी। नरेश एंव उनके द्वारा निर्मित सरकार ने इस अस्थिरता को जनमत द्वारा दबाने की कोशिश अवश्य की लेकिन विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयों ने इस दबाव को असफल कर दिया।

नरेश एंव नरेश की चुनी हुई सरकार ने जनता को शांत रखने के लिए जनमत संग्रह एंव संविधान में संशोधन का रास्ता अपनाया। जनमत संग्रह का निर्णय नेपाल की राजनीति में काफी महत्वपूर्ण था। नेपाल नरेश वीरेन्द्र द्वारा मई, 1979 में जनमत संग्रह का आह्वान किया गया। जो राजनीतिक दल प्रतिबंधित थे उन्होंने सरकार पर काफी दबाव डाला और छात्र संगठनों से सहयोग प्राप्त किया। परन्तु जनमत संग्रह से जिस परिणाम की उम्मीद की जा रही थी, वह उनके ठीक विपरीत निकला। 54.7% मत पंचायती व्यवस्था को प्राप्त हुए वहीं 45.3% मत बहुदलीय व्यवस्था को मिले। चुनाव में खारिज मतों की संख्या ज्यादा हाने के कारण गडबडी की आशकां बनी रही। बिश्वेश्वर प्रसाद कोईराला ने जनमत संग्रह के परिणाम घोषित होने के बाद कहा कि, 'मैं जनमत संग्रह का परिणाम स्वीकार करता हूँ. जो मेरे लिये अस्वीकार्य एंव अदभुत है। मैं इसे समझा नही पाऊगां'।[1]

देश में जनमत कराने का आधार यह था कि बहुदलीय व्यवस्था या सुधरी हुई पंचाायत व्यवस्था को लाया जाय। अत :जनमत के द्वारा सरकार को यह पता लगा कि पंचायत व्यवस्था को समयानुसार संशोधित एंव बदलना जरुरी है। इसी कारण एक साल में ही संविधान में संशोधन लाया गया और 1986 में नेपाल के अंदर राष्ट्रीय चुनाव हुए जिसमें खुले आम प्रतिबंधित राजनीतिक दलों को इन चुनावों के साथ नही जोडा गया 'लेकिन जनता के

---

[1] *Nabin Khabar*, May 14, 1980, as cited by Lok Raj Baral, *Nepal's Politics of Referendum: A Study of Groups, Personalities and Trends*, (New Delhi, Vikas Publishing House, 1983), p. 104.

अंदर सरकारी अधिकारियों के प्रति असंतोष व्याप्त हो गया, चाहे वे राजप्रासाद से हो या राष्ट्रीय पंचायत, जांच समिति व राष्ट्रीय क्रीडा परिषद से हो'।[2]

1986 में नरेश वीरेन्द्र द्वारा चुने गये प्रधानमंत्री लोकेन्द्र बहादुर चांद चुनाव करवाने में सफल रहे तथा बहिष्कृत दलों से जुडे नेताओं ने इस चुनाव में भाग नही लिया। जो राजनीतिक नेता सरकार का गठन करने में और नरेश के समर्थक बनने की कोशिश में थे उन्होंने इस चुनाव में भाग लिया। इस कारण इस चुनाव के परिणाम ने एक ऐसे केबिनेट का गठन किया जिसमें नेताओं के मध्य परस्पर समन्वय नहीं था। परिणाम के अनुसार मारीच मानसिंह श्रेष्ठा को प्रधानमंत्री के पद पर चुना गया।[3] क्योंकि इतने समय के अंदर वे नरेश के विश्वसनीय पात्र बन गये। 1987 में ज्यादातर पुलिस व सेना के अधिकारी, राजनीतिज्ञ एंव वे व्यवस्थापक जो शाही परिवार के साथ संबध रखते थे उनके भ्रष्टाचार, अपराध, षडयंत्र आदि प्रकरणों में लिप्त होने के मामले सामने आने लगे। इसमें पदम ठकुराती और डेयरी विकास संघ के प्रकरण उल्लेखनीय हैं।[4]1987 में 'एमनेस्टी अन्तर्राष्ट्रीय' के प्रकाशन में नेपाल के मानवाधिकार रिर्पोट के अनुसार पत्रकारों पर काफी अत्याचार हुए।[5] इस समय के दौरान जो पत्रकार भ्रष्टाचार आदि की खबरें प्रकाशित कर रहे थे उन्हें तुरन्त जेल में डाला जा रहा था। इस बीच 1988 के अंदर मारीच मानसिंह श्रेष्ठा ने नरेश के आदेशानुसार मंत्रिमंडल में तीन बार परिवर्तन किया। इसी समय अगस्त माह में नेपाल में एक भयंकर भूकम्प भी आया जिसमें काफी मात्रा में जनहानि हुई एंव काफी सम्पत्ति का नुकसान भी हुआ। सरकार ने राहत कार्य में बेरुखी दिखायी जो कि जनारोष को बढाने का एक कारण भी बना। दशरथ स्टेडियम में हुई घटना ने भी श्रेष्ठा सरकार के विश्वास को टूटने में मदद की।

---

2 Lok Raj Baral, *Nepal's Politics of Referendum: A Study of Groups, Personalities and Trends*, (New Delhi, Vikas Publishing House, 1983), p. 33.

3 Rishikesh Shaha, *Politics in Nepal 1980 – 1991: Referendum, Stalemate and Triumph of People Power*, (New Delhi: Manohar Publishers, 1993), p. 131

4 Ibid. p. 153.

5 Amnesty International, Country Reports, Nepal, 1987, see www.amnesty.org

23, मार्च 1989 को भारत और नेपाल के मध्य चल रही व्यापार एंव आवागमन संधि की अवधि पूर्ण हो गई। भारत के साथ व्यापार एंव आवागमन संधि की समयावधि समाप्त हो जाने से जनता का असन्तोष और भी उग्र हो गया।[6] इस हालात से निकलने के लिए जो प्रयास नेपाली सरकार ने किये वे व्यर्थ रहे जैसे भारत की सहायता के बगैर बाहर से सामान ले आना। इस संधि का नवीनीकरण न करने में तीन कारण प्रमुख थे– प्रथम, इस संधि के आधार पर भारत की अनुमति के बिना नेपाल किसी अन्य देश से हथियार विनिमय या खरीद नहीं सकता। मगर नेपाल की सम्प्रभुता के लिये यह उस समय एक प्रश्न था। जिस कारण नेपाल ने इसी समय के दौरान भारत की अनुमति के बगैर चीन से हथियार खरीदने के निर्णय लिये थे, जो भारतीय सरकार के लिये चिन्ता का कारण था। द्वितीय , जो भारतीय नेपाल में जीवकोपार्जन कर रहे थे उनको एक विशेष कार्य अनुमति (वर्क परमिट) की जरूरत थी। जो नेपाली भारत में काम करने आ रहे थे उन्हें इसकी जरूरत नहीं थी। अतः यह व्यवहार पक्षपातीय प्रतीत होने लगा। तृतीय , अन्य कारण जो इस संधि के नवीनीकरण में बाधा डाल रहे थे वे है आयात शुल्क जो भारत से लाये गये सामानों के ऊपर लगाए जा रहे थे। दोनो देशों के बीच जो अवैध व्यापार चल रहा था उसे दोनो सरकार मानने को तैयार नही थी।[7]

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि नेपाल अपने रक्षा संबधी मुददों को भारत के साथ हुई व्यापार एंव आवागमन संधि से पृथक रखना चाहता था किन्तु भारत इसके लिये तैयार नहीं था।

सितम्बर, 1989 में बहिष्कृत नेपाली कांग्रेस के नेताओं ने 'राजनीतिक जागृति सप्ताह' की घोषणा की। इसी वक्त यूरोप में भी साम्यवादी देशों के टूटने की शुरुआत हुई। जिसने नेपाल की जनता के अंदर एक जोश का संचार

---

6 SK Chaturvedi, *Nepal: Internal Politics and Its Constitutions*, (New Delhi: Inter – India Publications, 1993), p. 135.

7 Narayan Khadka, *Politics and Development in Nepal: Some Issues* (Jaipur: Nirala Publications, 1994), pp. 344 – 345.

किया। 1990 के जनवरी महीने में भारतीय नेता चन्द्रशेखर एंव सुब्रमण्यम स्वामी की देखरेख में एक तीन दिवसीय राष्ट्रीय बैठक की घोषणा की गई, यह बैठक नेपाली कांग्रेस के नेता गणेश मानसिंह के निवास स्थान 'थामेल' पर हुई। जिसमें करीब तीन हजार नेपाली कांग्रेस के सदस्यों ने योगदान दिया।[8] इस महासभा में यह घोषणा की गई कि 18, फरवरी जो 'लोकतंत्र दिवस' के नाम से जाना जाता है उसी दिन से **जन आन्दोलन** को प्रारंभ किया जाएगा। इस जन आन्दोलन में जूलूस, हडताल, रैलियां, सभाएं, सरकारी भवनों का घेराव एंव महागिरफ्तारी इत्यादि का प्रयोग किया गया। इन राजनीतिक चुनौतियों का सामना करने के लिये श्रेष्ठा सरकार ने पंचायती लोकतंत्र को बढावा देने के लिये 'पंच रैली' की घोषणा की जो कि पूर्ण रुप से असफल रही। सरकार ने दो प्रमुख अखबार 'बीमर्स' और 'नेपाली आवाज' को बंद कर दिया जिस कारण भी जनता में जनारोष उग्र हुआ। 14, फरवरी 1990 को शहाना प्रधान जो कि सयुंक्त वाम पंथ (UML) की अध्यक्ष थी उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। एंव उसके तीन दिन बाद नेपाली कांग्रेस दल के सभी प्रमुख नेताओं को जिनमें गणेश मानसिंह, कृष्ण प्रसाद भट्टाराई और गिरिजा प्रसाद कोइराला को गृहबंदी बना लिया गया।[9]

जन आन्दोलन को बढावा देने के लिए भारत के राजनीतिक नेताओं और बुद्धिजीवियों ने भी काफी सहायता की। जिस समय जन आन्दोलन चल रहा था उस वक्त काफी नेपाली राजनीतिक नेता जैसे ऋषिकेश शाह, गिरिजा प्रसाद कोइराला, बाबूराम भटटाराई आदि भारत के मुख्य शहरों में आकर एक जनमत पैदा करने में सफल रहे। ऋषिकेश शाह ने दिल्ली में नेपाली जनता के ऊपर हो रहे अत्याचारों और सरकार द्वारा मानव अधिकारों के उल्लंघन के बारे में बताया। शाह जब दिल्ली से वापस नेपाल गये तो उन्हें देशद्रोह के आरोप मे सरकार द्वारा नजरबंद कर दिया गया। नेपाल के राजनीतिक नेता अपनी बातों

---

8 Shastra Dutta Pant, *Comparative Constitutions of Nepal*, (Kathmandu: SIRUD, 1995), p. 49.

9 William Raeper and Martin Hoftun, *Spring Awakening*, (New Delhi: Viking Publishers, 1992), pp. 53 -55.

को सरकार के सामने रखने के लिये भारतीय मीडिया का सहारा लेने लगे एंव जनता का विश्वास व सर्मथन प्राप्त किया।[10] अतः भारत के मीडिया का जन आन्दोलन में भी काफी योगदान रहा।

18 तारीख दोपहर को रॉयल नेपाल एयर लाइन्स कोरपोरेशन के भवन के सामने करीब दस हजार आन्दोलनकारियों की पुलिस के साथ मुठभेड हुई। 19, फरवरी को काठमांडू में हडताल घोषित की गई और भक्तपुर में इसी पैमाने पर आन्दोलनकारी पुलिस पर टूट पडे। जन आन्दोलन कुछ ही दिनों में पूरे नेपाल में आग की तरह फैल गया। 20, फरवरी को पहली बार वकीलों के संघ ने देशव्यापी हडताल की घोषणा की। काठमांडू में त्रिभुवन विश्वविद्यालय में भी अनिश्चित हडताल की घोषणा की गई। 25, फरवरी के दिन पूरे देश में 'काला दिवस' मनाया गया। जिससे सम्पूर्ण नेपाल में हलचल मच गई। उस दिन के अन्त तक हजारों आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया और मार्च के पहले सप्ताह में ही सडकों पर लाशें नजर आने लगी। मार्च के अन्त में सारे काठमांडू व आसपास के इलाको में अन्धेरा छा गया। आन्दोलनकारियों के साथ देश की जनता ने भी शाम में कोई बिजली नहीं जलाई और 'बाती निबाऊ'-पंचायत व्यवस्था मुर्दाबाद ! (अर्थात् बत्ती बुझाओ, पंचायत व्यवस्था मुर्दाबाद) के नारे लगाये गये।[11] 1, अप्रेल के दिन पाटन शहर के हालात सरकार के नियन्त्रण से बाहर हो गया एंव 2, अप्रेल को राष्ट्रव्यापी हडताल का आह्वान किया गया। 6, अप्रेल एंव 9, अप्रेल के दिन जन आन्दोलन अपने चरम पर था। 6, अप्रेल की राष्ट्रव्यापी हडताल में सरकारी कर्मचारियों एंव एयरपोर्ट के कर्मचारियों ने भाग लिया। उसी दिन श्रेष्ठा सरकार को बर्खास्त किया गया एंव लोकेन्द्र बहादुर चांद को प्रधानमंत्री बनाया गया। सरकार परिवर्तन के बाद नरेश ने स्वंय रेडियो नेपाल पर एक संदेश दिया जिसमें संविधानिक संशोधन की बात कही गई और कहा गया कि आन्दोलन के दौरान हुई हत्याओं की

---

[10] Ibid, pp.40-41
[11] Ibid, pp. 57 – 63.

जांच पडताल की जाएगी। इस घोषणा के बाद काठमांडू की सडको पर करीब पचास हजार जनता एकत्रित हुई। जब जनता दरबार मार्ग की तरफ बढने लगी जो कि नारायणहिती राजप्रासाद का मुख्य मार्ग है वहां पुलिस ने भीड पर नियन्त्रण पाने के लिए फायरिंग की जिसमें न जाने कितनी जाने गई। 6, अप्रेल शाम को काठमांडू व पाटन शहर में कर्फ्यू घोषित किया गया जो कि अगले दो दिन तक चालू रहा। 9, अप्रेल मध्यरात्रि में नेपाल नरेश ने यह घोषणा की कि राजनीतिक दलों के ऊपर से प्रतिबंध हटा लिया गया है। इस घोषणा से जन आन्दोलन में विराम आ गया। 14, अप्रेल के दिन नेपाली कांग्रेस व संयुक्त वामपंथ के नेताओं की प्रधानमंत्री के साथ कई घंटे बातचीत हुई। और प्रधानमंत्री चांद ने इस वार्तालाप के बाद स्वंय का इस्तीफ़ा नरेश को सौंप दिया। उसी दिन सुबह एक शाही फरमान रेडियो नेपाल पर जारी हुआ कि पचांयत नीति, जांच समिति, वर्ग सगंठन आदि को भंग किया जा रहा है। 19, अप्रेल को एक अन्तरिम सरकार गठित की गई जिसमें कृष्ण प्रसाद भट्टाराई को अन्तरिम प्रधानमंत्री चुना गया।[12] जन आन्दोलन के दौरान नेपाली कांग्रेस एंव संयुक्त वाम मोर्चा ने सरकार के समक्ष अपनी प्रमुख मांगें रखी। उनमें प्रमुख है, संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना मंत्रिपरिषद की सलाह नरेश को माननी पडेगी नागरिकों को लोकतांत्रिक अधिकारों की गारण्टी, लोकतंत्र को मजबूत करने वाली संस्थाओं पर जोर देना, स्वतंत्र चुनाव आयोग का स्थापना, प्रेस एंव अन्य स्वतंत्रताओं पर जोर एंव संविधान के विरोधी कानूनों को वापस लेना।[13]

नेपाल में बढते हुए जन आन्दोलन और इससे उत्पन्न जन आकोश नेपाल की शाही सरकार के लिए एक गंभीर चुनौती बन गया। इस बदलते हुए परिदृश्य में नरेश वीरेन्द्र ने दमन का रास्ता छोडकर सहयोग का रास्ता

---

[12] Michael Hutt, "Drafting the 1990 Constitution", in Michael Hutt, ed., *Nepal in the* Nineties, (New Delhi: Oxford University Press, 1994), pp. 30-41.

[13] Lok Raj Boral, *The Regional Paradox: Essays in Nepali and South Asian Affairs*, (Delhi, Adroit Publishers, 2000), p. 20.

अपनाया जो कि केवल एकमात्र विकल्प था जिससे इस हिमालयी राज्य में राजतंत्र को बचाया जा सकता था। तद्नुसार 30, मई 1990 को एक शाही फरमान जारी करके नरेश वीरेन्द्र ने एक संविधान सुझाव आयोग की स्थापना की तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश विश्वनाथ उपाध्याय को इसका अध्यक्ष मनोनीत किया गया। इस सात सदस्यीय आयोग में अन्य सदस्य नेपाली कांग्रेस व कम्यूनिस्ट दल एंव अन्य सरकारी विभागों से थे जो इस प्रकार है- दमननाथ डूंगाना, भारत मोहन अधिकारी, माधव कुमार नेपाल, मुकुन्द रेगमी, लक्ष्मण अरयाल, नीलाम्बर आचार्य (जो कि कानून एंव विधि मंत्री थे एंव 1990 के संविधान की केबिनेट उप समिति के आयोजक भी थे)।[14] इस आयोग ने मौजूदा राजनीतिक हालात और जन आकांक्षाओं को मद्देनजर रखते हुए अपनी सिफारिशों द्वारा प्रजातंत्र का मार्ग खोल दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री कृष्ण प्रसाद भट्टाराई एंव उनके मंत्रिमंडल ने इन सुझावों को ध्यान में रखते हुए 5, नवम्बर को संविधान का अन्तिम मसौदा नरेश को सौंप दिया। इसमें न केवल मंत्रिमंडल की औपचारिक सहमति थी अपितु स्वीकृति भी समाहित थी। इस मसौदे को प्राप्त करने के बाद नरेश वीरेन्द्र ने काफी गंभीर विचार किया एंव 9, नवम्बर 1990 को ऐतिहासिक शाही घोषणा में इस नवीन संविधान को उद्घोषित एंव लागू किया गया। जो कि नेपाल के इतिहास में एक स्मरणीय घटना थी।[15] इस संविधान का प्रारुप बनने के समय से लेकर इसकी नरेश द्वारा स्वीकृति तक प्रधानमंत्री कृष्ण प्रसाद भट्टाराई की भूमिका अत्यन्त उल्लेखनीय रही। इस राजनीतिक संक्रमणकाल के दौरान प्रधानमंत्री को एक तरफ जन आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना था तो दूसरी तरफ एकाधिकारवादी राजतंत्र के समर्थक दबाव समूहों को अपने साथ लेकर नरेश वीरेन्द्र की स्वीकृति प्राप्त करनी थी। अतः प्रधान मंत्री कृष्ण प्रसाद भट्टाराई ने

---

[14] Ram Kumar Dahal, "Constitutional and Political Developments in Nepal", (Kathmandu: Ratna Pustak Bhanda 2001), pp. 72-73.

[15] Michael Hutt, n.13, p.28

अपनी समझ बूझ से एवं नरेश के साथ सलाह मशवरा करने के बाद इस नवीन व्यवस्था का श्रीगणेश किया।

1990 का संविधान

1990 का संविधान नेपाल ससंदात्मक प्रजातंत्र का नया अध्याय प्रारंभ करता है। तथा साथ ही संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना करता है। संविधान की प्रस्तावना में यह स्पष्ट रुप से उल्लेख किया गया है कि सम्प्रभुता राष्ट्र की जनता में निहित रहेगी। यह संविधान अपने अदंर कुछ विशिष्ट तत्व समाये हुए है जैसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय, आधारभूत मानवाधिकार, वयस्क मताधिकार, सरकार का ससंदात्मक रुप, संवैधानिक राजतंत्र, बहुदलीय लोकतंत्र, जनता के मध्य भातृत्व की प्रवृति, स्वतंत्रता एंव समानता के आधार पर उत्पन्न एकता, स्वतंत्र न्यायालय जो सामाजिक न्याय के द्वारा देश में विधि का शासन स्थापित करेगा।[16] इस संविधान में कुल 23 भाग है और 3 परिशिष्ट है। सम्पूर्ण संविधान 135 अनुच्छेदों में विभक्त है जो कि नेपाल की शासन व्यवस्था के पूरे ढांचे को इंगित करते हैं।

पहले भाग में सात अनुच्छेद है जो संविधान को एक मौलिक कानून की तरह प्रदर्शित करता है। यह संविधान नेपाल को बहुभाषीय, बहुसंजातीय, लोकतांत्रिक, स्वतंत्र, पृथक, सार्वभौमिक, हिन्दू एंव संवैधानिक राजतंत्रात्मक राष्ट्र घोषित करता है। भाग प्रथम में राष्ट्र की एकता और मजबूती के ऊपर जोर दिया गया है। तथा सम्प्रभुता को जनता में निहित किया गया है। चौथे अनुच्छेद में नेपाल को 'नेपाल अधिराज्य' कहा गया है। नेपाली भाषा को राष्ट भाषा का दर्जा दिया गया है। तथा बहुभाषाएं जो कि मातृभाषा के रुप में बोली जाती है उन्हें नेपाल की भाषा के रुप में जाना जाएगा।

दूसरे भाग में तीन अनुच्छेद है जो नागरिकता से सबंधित है। इस भाग में कहा गया कि नागरिकता जन्म के आधार पर या पैतृकता आधार पर मानी

---

[16] The Text of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

जायेगी। बाहरी व्यक्ति के लिये नागरिकता ग्रहण करने का भी प्रावधान है जिसके अनुसार वह व्यक्ति राष्ट भाषा को लिख व पढ पायेगा, नेपाल के अदंर किसी कार्य में संलग्न रहेगा, अन्य नागरिकता को त्याग देगा तथा नेपाल में उसे कम से कम पन्द्रह वर्ष रहना होगा। इस संविधान के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जाने माने व्यक्ति को नागरिकता प्रदान की जा सकती है।

मौलिक अधिकार

तीसरा भाग जो कि अनुच्छेद 11 से अनुच्छेद 23 तक है इसमें मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 11 कानून के समक्ष समानता एंव सरंक्षण की बात करता है। अनुच्छेद 12 में स्वतंत्रता का उल्लेख किया गया है। जिसमें यह कहा गया कि नेपाल में बहुसंजातीय, पंथ और समुदायों के मध्य एक सोहार्द्र संबध बनाने की कोशिश की जायेगी। अनुच्छेद 13 प्रेस की स्वतंत्रता को वर्णित करता है। अनुच्छेद 14 में फौजदारी के मामलों की सुनवाई इत्यादि की प्रकिया के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है। वहीं अनच्छेद 15 में यह व्यवस्था की गई है कि किसी भी नागरिक को बिना पर्याप्त कारणों के नजरबंद नही किया जायेगा। विधि के विरुद्ध अथवा बुरी नियति से की गई नजरबंदी के लिए विधि के अनुरुप मुआवजा प्राप्त करने का हर व्यक्ति को अधिकार होगा। अनुच्छेद 16, 17 और 18 राष्ट्र में एकता बनाए रखने की कोशिश में बनाये गये। ये अनुच्छेद भाषा, लिपि, संस्कृति, विभिन्न संजातीय समूहो की पहचान एंव सम्पत्ति के अधिकार आदि की चर्चा करता है। इस संविधान में नागरिकों को संवैधानिक उपचार के अधिकार भी प्रदान किये गये। संविधान में यह कहा गया कि सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून को अमान्य घोषित कर सकता है। अनुच्छेद 19 के अनुसार नेपाल के सभी नागरिकों को अपने धर्म जो कि उन्हें पिछले काफी समय से उनके द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा है। उन्हें इस धर्म को प्रचार करने व मानने की स्वतंत्रता है। परन्तु किसी

को धर्मान्तरण करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।[17] अनुच्छेद 20 के अनुसार व्यक्तियों की खरीद, दास प्रथा, जबरन मजदूरी, ये सभी रूप में प्रतिबंधित किये गये है।[18] अनुच्छेद, 21, 22, और 23 नागरिकों को, निर्वासन के विरुद्ध अधिकार, गोपनीयता का अधिकार एंव संवैधानिक उपचारों का अधिकार इत्यादि के प्रावधान वर्णित है।

राज्य के नीति निर्देशक तत्व

अध्याय 4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन किया गया है। जिसके अर्न्तगत 3 अनुच्छेद आते है। इन तीनों अनुच्छेदों में देश के अंदर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की स्थापना की बात की गई एंव आधारभूत जीवन की उन्नति करना भी इसका ध्येय रहा। इस भाग में राष्ट्र की वैदेशिक नीति के बारे में भी कहा गया है। इसमें कहा गया कि नेपाल अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर शांति, सोहार्द्र एंव भाईचारे को स्थापित करने और नेपाल की पृथक पहचान बनाने का प्रयास करेगा। तथा साथ ही साथ नेपाल पडौसी देशों के साथ समानता के आधार मित्रता एंव सोहार्द्र का वातावरण बनाने के लिए कोशिश जारी रखेगा।

राजतंत्र

संविधान के भाग 5 में नरेश की भूमिका, स्थिति और शक्ति को वर्णित करता है। इसके अर्न्तगत अनुच्छेद 27 से 33 तक नरेश की संवैधानिक भूमिका, राजसिंहासन तक पहुंचना, नरेश एंव राजपरिवार के मदों व खर्चों इत्यादि के लिये किसी भी न्यायालय में उन्हें चुनौती नही दी जा सकती। नरेश संवैधानिक

---

[17] Article 19 of the text of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990

[18] Article 20 of the text of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990

राजतंत्र होने के नाते इस संविधान को रक्षित करेगें एंव बढावा देगें और यह ध्यान रखेगें कि प्रत्येक कानून नेपाल की जनता के हित में रहे।

ससंद

भाग 6 राजपरिषद के बारे में बताता है जिसमें 23 सदस्य होगें। ये सभी सदस्य नरेश के प्रयास पर्यन्त से ही अपने पदों पर बने रहेगें। राजपरिषद को कार्यों में सहायता करने के लिये नरेश द्वारा एक 15 सदस्यीय समिति का गठन किया गया जिसके सदस्य नरेश द्वारा चुने जायेगें। इन 15 सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्यों का कार्यकाल 4 वर्ष होगा। भाग 7 में अनुच्छेद 35 से 43 तक नरेश एंव राजपरिषद की कार्यपालिका शक्तियों का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 35 में यह कहा गया कि नरेश अपनी कार्यपालिका शक्ति के अनुसार निर्णय राजपरिषद की सहमति एंव सलाह से लेगें परन्तु कुछ जगहों पर निर्णय लेते समय राजपरिषद की सहमति की आवश्यकता नहीं है। प्रधानमंत्री एंव मंत्रिपरिषद सामूहिक रुप से प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी होगें। यदि अविश्वास प्रस्ताव में कोई मंत्री विश्वास खो दे तो सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद एंव प्रधानमंत्री को नरेश के समक्ष इस्तीफा देना होगा एंव चुनाव की याचना करनी होगी। प्रधानमंत्री एंव मंत्रिपरिषद द्वारा किये गये कृत्यों व निर्णयों के बारे में सारी जानकारी नरेश को देना जरुरी है। यह प्रधानमंत्री का दायित्व होगा कि वह प्रशासन संबधी सभी सूचना नरेश को स्वंय दे। भाग 8 में 24 अनुच्छेदों का वर्णन है जो कि ससंद के कार्य, संगठन एंव शक्तियों के बारे में बतलाते है। इस भाग में व्यवस्थापिका के बारे में कहा गया है जिसमें नरेश, दोनो सदनों प्रतिनिधि सभा व राष्ट्रीय परिषद के बारे में वर्णन किया गया है। इसमें द्विसदनीय ससंद का प्रावधान था तथा एक व्यक्ति द्वारा एक मत के आधार पर प्रतिनिधि सभा को गठित करने का प्रावधान भी रहा एंव इसमें 205 सदस्य होगें। तथा राष्ट्रीय परिषद में 60 सदस्य होगे जिसमें 35 सदस्य प्रतिनिधि सभा से चुने जाएगें। प्रतिनिधि सभा का कार्यकाल 5 वर्ष रहेगा। वहीं राष्ट्रीय परिषद अस्थाई सदन है जिसमें प्रत्येक दो वर्ष में एक तिहाई सदस्य

पदमुक्त होगें। प्रतिनिधि सभा के स्पीकर द्वारा नरेश को भेजा गया प्रस्ताव जो कि दोनो सदनों द्वारा सहमति से स्वीकृत किया गया है उसे नरेश वापस भी कर सकते है परन्तु जब धन विधेयक को नरेश के पास विचार हेतू भेजा जाता है जिसे वे एक बार लौटा देते है परन्तु संयुक्त बैठक में पुर्नविचार के उपरान्त उसे पुनः नरेश के पास भेजा जाता है तो नरेश को उसे स्वीकृति देनी ही होगी।

न्यायपालिका

भाग 11 में अनुच्छेद 84 से 94 तक न्यायपालिका के बारे में कहा गया है। न्याय के क्षेत्र में सर्वोच्च न्यायालय का स्थान सबसे ऊपर है। तथा यह अधीनस्थ न्यायालयों को आदेश जारी करेगा, निरीक्षण एंव समन्वय का कार्य भी करेगा। सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायधीश एंव 13 उप न्यायधीश होगें। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति जहां संवैधानिक परिषद की सलाह पर की जायेगी वहां अपीलीय और जिला न्यायालयों की नियुक्ति न्यायिक परिषद की सलाह व सिफारिश से की जायेगी। सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनरीक्षा एंव कानूनों की वैधता की जांच करने कार्य भी करेगा। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के पास प्रारंभिक, अपीलीय एंव सलाहकारी क्षेत्राधिकार होगें। इसके अधीन में जिला न्यायालय व अपीलीय न्यायालय रहेगें। सर्वोच्च न्यायालय को सलाह देने के लिये संविधान में एक न्यायिक सेवा आयोग भी वर्णित है। अनुच्छेद 112 में राजनीतिक दलों की बहुदलीय व्यवस्था के प्रावधान उल्लेखित है। यहां कहा गया कि किसी राजनीतिक दल का गठन धर्म, जाति, समुदाय, जनजाति और क्षेत्र के आधार पर नही किया जा सकता।

आपातकालीन प्रावधान

भाग 18 में आपातकालीन शक्तियों के बारे में कहा गया है। नरेश द्वारा इन आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग विशेष परिस्थितियों में किया जायेगा।

यदि राष्ट्र की सम्प्रभुता, एकीकरण एंव सुरक्षा को आंच पहुंचे या बाहरी आक्रमण, आंतरिक अशांति व भयंकर आर्थिक मंदी इत्यादि के उत्पन्न होने से आपातकाल की घोषण की जाएगी। इसलिए नरेश की यह घोषणा प्रतिनिधि सभा में तीन माह के अदंर प्रस्तुत की जानी चाहिए जिसे दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति मिलनी चाहिए। तथा स्वीकृति मिलने के बाद यह 6 माह तक जारी रहेगा। आपातकाल की अवधि बढाने के लिए यही प्रकिया पुनः दोहराई जायेगी। यदि प्रतिनिधि सभा इस समय के दौरान भंग हो जाए तो इसका निर्णय राष्ट्रीय परिषद करेगी।

संवैधानिक संशोधन

भाग 19 के अनुच्छेद 116 में संवैधानिक संशोधन के बारे में कहा गया है। संशोधन प्रस्ताव किसी भी सदन में लाया जा सकता है तथा दोनो सदनों में ही दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होगी तथा मतों का निर्धारण उपस्थिति के आधार पर होगा। अनुच्छेद 119 में नरेश को राष्ट्र की सेना का सर्वोच्च सेनापति घोषित किया गया। अनुच्छेद 126 में यह कहा गया कि नेपाल के साथ हुआ कोई भी समझौता और संधि तब तक मान्य नही होगी जब तक ससंद उसे दो तिहाई बहुमत से पास न कर दे। इस संविधान में अन्य कई अनुच्छेद है जो महालेखा परीक्षक, चुनाव निर्वाचन इत्यादि के बारे में भी विस्तृत व्याख्या करते है। संविधान का एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद 127 है जिसमें यह कहा गया है कि इस संविधान के समक्ष यदि कोई समस्या आ जाये तो उन समस्याओं को हटाने के लिये नरेश आवश्यक आदेश जारी कर सकते है। जिन्हे संसद के सामने प्रस्तुत करना होगा।[19]

---

[19] Article 127 of the Text of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

तुलनात्मक अध्ययन

1990 के संविधान की रचना कुछ मांगो को मध्येनजर रखते हुए की गई थी। ये मांगे थी कि " यह संविधान सम्पूर्णतया लोकतांत्रिक होगा, संवैधानिक राजतंत्र लाया जाएगा, मंत्रिपरिषद की सलाह से ही नरेश कार्य करेगें, जो भी सस्था और कानून लोकतांत्रिक नही है उन्हें हटाया जायेगा, मौलिक अधिकार सभी नागरिक प्रयोग करेगें, ऐसी सस्था की स्थापना की जायेगी जिसमें लोकतंत्र सुदृढ हो, एक स्वतंत्र चुनाव आयोग की स्थापना की जाए, प्रेस एंव शैक्षणिक स्वतंत्रता और महिलाओं को समान अधिकार।"[२०] इसी कारण 1990 का संविधान विगत संविधानों की अच्छाईयों का सममिश्रण था जिसके ऊपर लोकतंत्र का मुहर लगी हुई थी। यह संविधान बाकी संविधानों से कैसे विशिष्ट पृथक रहा यह एक विचारणीय प्रश्न है। मौलिक अधिकार जो 1990 के संविधान के भाग तीन में दर्शाये गये है जिन्होंने लोकतंत्र स्थापित होने में काफी मदद की है तथा इनके द्वारा ही नये अधिकारों को रोपा जा सका है। अनुच्छेद 3, 4, 5, 6, 8, और 12 जो वस्तुतः प्रेस एंव प्रकाशन का अधिकार, अपराध दोष सिद्धि का अधिकार, नजरबंदी के विरुद्ध अधिकार, सूचना का अधिकार, सस्कृति एंव शिक्षा पाने का अधिकार एंव गोपनीयता का अधिकार इत्यादि को 1962 के संविधान से हटाया गया था इन्हें पुर्नबहाल किया गया।

1990 के संविधान में मृत्युदण्ड के विरुद्ध भी कानून र्निमित किये गये। यद्यपि इस संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों के बारे में पृथक रुप उल्लेख नही किया गया है। जिनका कि अन्य सभी संविधानों में विस्तृत उल्लेख किया गया है। इस संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों को मौलिक अधिकारों के साथ ही बताया गया है। जिसमें सामाजिक कल्याण में वृद्धि, जनकोष में योगदान करना, श्री पांच एंव श्री तीन के प्रति कर्त्तव्यपरायण रहना एंव राष्ट व संविधान के प्रति विश्वास बनाये रखना इत्यादि मौलिक कर्त्तव्य सम्मिलित है।

---

[20] The Text of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

यदि बाकी संविधानों और 1990 के संविधान में नरेश की भूमिका को जांचा जाये तो काफी हद तक नरेश की शक्तियां इस संविधान में कम नही की गई है क्योंकि शासन के अन्य शक्ति केन्द्र जैसे प्रतिनिधि सभा, राजपरिषद आदि में नरेश की स्थिति व भूमिका ऊपर रखी गई है। तथा द्विअर्थी शब्दों से उनकी शक्ति को बनाये रखा गया है। यदि देखा जाये 1990 के संविधान के बनने के बाद नरेश ने संविधान को बनाये रखते हुए स्वंय की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि की है। जैसा कि अक्टुबर, 2002 की घटना में नरेश का हस्तक्षेप संविधान को आधार बनाकर ही किया गया। नरेश ने निर्वाचित प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा को निर्धारित समय पर चुनाव न करवा पाने के आधार पर एंव शासन व्यवस्था का ठीक प्रकार संचालित न कर पाने के आधार पर बर्खास्त कर दिया। जो कि एक असंवैधानिक एंव अलोकतांत्रिक कदम है। नरेश ने अनुच्छेद 127 को आधार बना कर यह कदम देश में चल रही विकट परिस्थितियों को देख कर उठाया। इससे पता चलता है कि 1990 का संविधान यद्यपि संवैधानिक राजतंत्र की बात करता है परन्तु नरेश की क्षमता को कम करने में इस संविधान में ज्यादा प्रयास नही किया गया।

इस संविधान के अनुसार नेपाल की ससंद द्विसदनीय होगी जबकि 1962 के संविधान में ससंद द्विसदनीय थी। राजतंत्र एंव लोकतंत्र को बचाय रखते हुये 1990 का संविधान द्विसदनीय ससंद की स्थापना करता है। तथा प्रतिनिधि सभा में यहां पर महिलाओं के स्थान भी आरक्षित है।

1990 का संविधान विगत संविधानों से काफी अतंर रखता है जिसमें न्यायालय भी विशेष स्थान रखता है। यहां पहली बार स्वतंत्र न्यायालय की स्थापना की गई। बल्कि विगत संविधानों में न्यायालय के मामले में नरेश की भूमिका ही निर्णायक रही। परन्तु इस संविधान में न्यायालय की एक .सटीक सरंचना बनाई तथा संवैधानिक कानूनों के जरिये सर्वोच्च न्यायालय को सरंक्षित किया गया।

इस संविधान में कुछ विशिष्ट बातें रही जो नेपाल के पिछले संविधानों में नहीं मिलती। संविधान के भाग 17 में राजनीतिक सगंठनों व दलों के बारे में बात की गई है जहां कहा गया है कि कोई भी राजनीतिक दल धर्म, जाति, समुदाय, जनजाति और अचंल के आधार पर दल का गठन नही कर सकेगें। यह भी कहा गया कि संवैधानिक संशोधन से भाग 17 में कोई बदलाव नही आएगा जिससे कि राजनीतिक दलों पर पाबंदी लगे या एकदलीय विचारधारा वापस आए। इसी भाग में यह भी कहा गया कि कोई दल यदि सदन में तीन प्रतिशत मत से कम मत प्राप्त करता है तो वह राजनीतिक दल नही अपितु स्वतंत्र दल माना जायेगा। एंव सबसे प्रमुख बात यह है कि प्रत्येक राजनीतिक दल में पांच प्रतिशत महिलायें होंगी।

विगत संविधानों की तरह 1990 का संविधान भी संशोधनों के प्रति कठोरता बरतता है। इस संविधान में प्रशासनिक सेवा के बारे में स्पष्ट रुप से उल्लेख किया गया है। संविधान में वैदेशिक संधि एंव समझौते के बारे में कहा गया है कि जब तक ससंद में वह समझौता या संधि बहुमत से स्वीकृत न हो जाये तब तक वह नेपाल राष्ट्र के ऊपर लागू नही हो सकता। इस संविधान में यह भी कहा कि यदि किसी समय किसी प्रकार की ऐसी राजनीतिक समस्या आये जो कि ससंद व राजनीतिक दलों से नही सुलझ रही है तब नरेश का निर्णय माना जाएगा।

निष्कर्षः

1990 का वर्ष नेपाल के लिये एक एतिहासिक वर्ष रहा। तीस साल के लम्बे अन्तराल के बाद नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना 1990 के संविधान के माध्यम से हुई। तथा 1962 के पंचायती शासन को जनता ने पूरी तरह नकार दिया। यद्यपि 1962 के संविधान में तीन बार संशोधन करके जनता की मांगों को पूरा करने की कोशिश की गई। परन्तु नेपाली जनता शासन व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन चाहती थी। अतः नरेश ने लोकतांत्रिक दबावों को देखते हुए एक जनमत संग्रह करवाया। जिके अर्न्तगत जनता को पंचायत व्यवस्था एंव

बहुदलीय व्यवस्था में से एक को चुनना था। परन्तु परिणाम विपरीत निकलने से स्थिति और दयनीय हो गई। अतः प्रतिबंधित दलों एंव जनता के मन में शासन के विरूद्ध राष 1990 में जन आन्दोलन के रूप में उभरकर सामने आया। यह जन आन्दोलन नेपाली कांग्रेस एंव वामपंथी दलों के नेतृत्व में संचालित किया गया। यह आन्दोलन सम्पूर्ण राष्ट्र में वृहद पैमाने पर फैल गया एंव जनता ने इसमें भारी संख्या में भाग लिया। अतः नरेश ने आन्तरिक एंव बाहरी लोकतांत्रिक शक्यिों के दबाव के चलते एक नये संविधान की घोषणा की। उन्होने यह कदम राजतंत्र को सुरक्षित रखने के लिये उठाया जिससे कि जनता का विश्वास नरेश के प्रति बना रहे।

इस प्रकार 1990 में पंचायत व्यवस्था का अन्त हुआ एंव बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का आगमन हुआ। इस नवीन संविधान की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं रही जिनका कि विगत संविधान में अभाव था। सम्प्रभुता नरेश में निहित न होकर जनता में निहित की गई एंव प्रतिबंधित राजनीतिक दलों को पुर्नबहाल करके बहुदलीय व्यवस्था की स्थापना की गई। इस प्रकार लोकतंत्र के आयामों को इस संविधान में सुदृढ किया गया। इस नवीन संविधान के अर्न्तगत मौलिक अधिकारों एंव राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को अधिक महत्व दिया गया एंव मानवाधिकारो पर भी जोर दिया गया। इस संविधान में नरेश की राजनीतिक भूमिका को कम किया गया एंव उन्हें संवैधानिक प्रमुख व राष्ट्र के प्रतीक के रूप में देखा गया। संविधान में यह भी कहा गया कि यदि संविधान के समक्ष कोई समस्या आने पर नरेश अन्तिम निर्णायक की स्थिति में रहेगें। 1990 के संविधान में एक प्रमुख प्रावधान यह भी रहा कि नेपाल के साथ हुआ कोई भी समझौता या संधि तब तक मान्य नही होगी जब तक उसे संसद दो तिहाई बहुमत से पास न कर दे। अर्थात् जनता के प्रतिनिधियों का सामूहिक रूप से सहमत होना आवश्यक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस संविधान मे लोकतंत्र के सभी तत्वों का समावेश किया गया एंव राजतंत्र का अनावश्यक हस्तक्षेप खत्म किया गया।

अध्याय 3

1990 के संविधान के समक्ष उभरते राजनीतिक पहलू एवं परिवर्तन

सन् 1990 के संविधान ने नेपाल के राजनैतिक चरित्र को एक नये मोड़ पर लाकर खडा कर दिया है। पहली बार राष्ट्र में संविधान लोकप्रिय इच्छाओं एंव शाही इच्छाओं की सम्मिश्रणता के आधार पर बना। यद्यपि इस संविधान की रचना करने के लिये किसी संवैधानिक सभा को गठित नहीं किया गया एंव मुख्यतः संवैधानिक सिफारिश (संस्तुति) समिति के सहयोग से ही संविधान को बनाया गया। अतः संविधान की जनतांत्रिक वैधता पर अवश्य ही प्रश्न उठाये जा सकते है। परन्तु जितनी महत्वपूर्ण भूमिका इस संविधान ने नेपाल की राजनीति में निभाना प्रारंभ किया है उसी से इस संविधान की वैधिक स्थिति पर कोई शंका नही होती। परन्तु विगत दशक के मध्य से ही नेपाल में संवैधानिक संकट आने प्रारंभ हो गये । जिसमें माओवादी आन्दोलन राष्ट्र के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया है। माओवादियों ने वस्तुतः 13 जनवरी 1996 को जनयुद्ध का कथित ऐलान घोषित किया। तथा आगामी सालों में माओवादियो ने अपने प्रभाव क्षेत्र को अत्यंत विस्मयकारी विस्तार दे डाला। माओवादियो का सबसे प्रमुख प्रश्न यह था कि संविधान का निर्माण बिना संवैधानिक सभा की रचना किये, कैसे हो सकता है ? अतः यह लोकतांत्रिक तरीके से निर्मित संविधान नही माना जा सकता। इसके साथ माओवादी यह भी कहते हैं कि बिना संवैधानिक सभा का निर्माण किये यह नवीन संविधान विगत संविधान का संशोधन मात्र है। आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षो में माओवादियों की यह मांग थी कि शासन व्यवस्था में नरेश की शक्तियों एंव उसके पद को पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाय, अर्थात् राजतंत्र की पूर्ण रूप से समाप्ति। एंव राष्ट्र में सरकार का गणतंत्रीय स्वरूप स्थापित किया

जाय। यद्यपि माओवादियों ने बाद में अपनी मांगों में कुछ परिवर्तन किये। उन्होने राजतंत्र को पूर्ण रूप से समाप्त करने की बजाय नरेश को संवैधानिक प्रमुख की स्थिति में रखने के प्रस्ताव पर सहमति प्रकट की। क्योंकि माओवादी इस बात को भली भांति समझ चुके थे कि राजतंत्र की जडें देश में काफी मजबूत है एंव साथ ही जनता की अगाढ आस्था नरेश के प्रति हमेशा से बनी रही है।

बहुदलीय लोकतंत्र की पुर्नस्थापना के पश्चात विगत बारह वर्षों में तीन राष्ट्रीय चुनाव हुए। जनप्रतिनिधि सदन के लिये प्रथम राष्ट्रीय चुनाव सन् 1991 में हुए, सन् 1994 में मध्यावधि चुनाव एवं इसके बाद चुनाव सन् 1999 में हुए।[1] इनके अतिरिक्त राष्ट्र में दो स्थानीय चुनाव भी हुए। इन चुनावों में नेपाली जनता ने भारी मात्रा में भाग लिया। अन्तिम दस वर्षों में नेपाल के इतिहास में सबसे ज्यादा हिंसक घटनाएं देखी गई जिन्हें रोकने के लिये सरकार ने संवैधानिक प्रावधानों को मानते हुए कदम उठाये।

संविधान में जो संवैधानिक राजतंत्र की बात कही गई है यह प्रवृति नरेश वीरेन्द्र की मृत्यु तक न बदलने की कोशिश रही। उन्होंने प्रत्यक्ष में ऐसा कोई कदम नही उठाया जिससे नेपाल के संवैधानिक राजतंत्र पर आंच आये।[2] परन्तु नरेश वीरेन्द्र के काल में माओवादी आन्दोलन संविधान के समक्ष चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया। जो कि उनके सम्पूर्ण काल में बनी रही ।

यहां कुछ मुददों को छोडकर जैसे नागरिकता बिल या माओवादी आन्दोलन को रोकने के लिये सेना का इस्तेमाल न करना इत्यादि के अतिरिक्त नरेश संविधान के प्रावधानों को ही प्राथमिकता देते रहे। परन्तु नरेश वीरेन्द्र की मृत्यु के पश्चात ज्ञानेन्द्र का नरेश बनना 1990 के संविधान के समक्ष एक चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया। नरेश ज्ञानेन्द्र द्वारा किये गये कृत्यों से

---

1 Surya Kiran Gurung, *Parliamentary Practice and Procedure in Nepal*, Nepali Journal of Contemporary Studies , Nepal Centre for Contemporary Studies, Vol. II, No. 2, September 2002.

2 S. Chandra Sekharan, "Is Nepal Still in Search of a Political Order: 1990 Constitution and Thereafter" , South Asian Analysis Group , Paper No. 481, 24 June 2002, see www.saag.org

यह साफ नजर आता है कि उन्होने इस संविधान को एक लिखित निर्देशिका के अतिरिक्त कुछ नही माना। तथा वर्तमान दौर में नरेश ज्ञानेन्द्र द्वारा उठाये गये कदमों में असंवैधानिकता स्पष्ट झलकती है। जैसे 4 अकटुबर 2002 में प्रधानमंत्री एंव उनके मंत्रिमंडल को नरेश द्वारा बर्खास्त किया जाना। वहीं राष्ट्र में विगत डेढ वर्षो के दौरान दो सरकारों का गिराया जाना एंव हाल ही में पुनः शेर बहादुर देउबा को प्रधानमंत्री बनाना, एक नाटकीय स्थिति प्रतीत होती है। तथा साथ ही नेपाली कांग्रेस के अध्यक्ष और पूर्व प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोईराला ने नरेश के इस फैसले पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा किए ' नेपाल नरेश ने श्री देउबा को प्रधानमंत्री कैसे नियुक्त कर दिया जबकि उन्होने 20 माह पहले ही श्री देउबा को अयोग्य करार देकर हटा दिया था।'[3] उन्होने इस घटना का अवलोकन करते हुए यह भी कहा कि हमें इस बात का कोई विरोध नही कि कौन प्रधानमंत्री बनता है मगर नेपाल नरेश ने संवैधानिक मर्यादाओं की अनदेखी की है।

संविधान के समक्ष विवादास्पद मुद्दे

नेपाल में 1990 का संविधान निर्मित होने के पश्चात ऐसे कई मुद्दे उभरकर सामने आये जिनका आन्तरिक एंव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी महत्व था तथा जिन्होने इस संविधान पर भी काफी हद तक असर डाला। यद्यपि विगत तेरह सालों में जो बात स्पष्ट नजर आती है वो यह कि इस संविधान में कोई आधारभूत परिवर्तन नही हुआ बल्कि ज्यादातर जो परिवर्तन नजर आये वे काफी कम महत्व लिये हुए थे।

धर्मान्तरण का मुद्दा

पहला मुद्दा जो कि देश की आन्तरिक राजनीति के समक्ष चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया वह था संविधान में वर्णित नेपाल राष्ट्र का हिन्दू

---

[3] *Hindustan*, (New Delhi), June 4, 2004.

घोषित होना।[4] संविधान में स्पष्ट रूप से पाबंदी लगाई गई है कि पृथक – पृथक धर्मों में विश्वास रखने वाले व्यक्ति नेपाल में निवास अवश्य कर पायेगें परन्तु धर्म परिवर्तन नही कर पायेगें तथा अन्य धर्मावलम्बी व्यक्ति का धर्म परिवर्तन करने की कोशिश नही करेगें।[5] इस संविधान के बनने से पहले ही भिन्न – भिन्न जनजातियों के व्यक्ति इस मुद्दे पर काफी असन्तुष्ट थे। क्योंकि सन् 1962 के संविधान में भी धर्म को लेकर एंव धर्मान्तरण के मामले में यही रूख अपनाया गया था। इस कारण यह मांग की गई थी कि या तो धर्म निरपेक्षता को अपनाया जाय या फिर 'हिन्दू' शब्द को संविधान से हटाया जाय जिससे राजनीति और धर्म को पृथक – पृथक रखा जा सके।

धर्मान्तरण के मामले पर संजातीय समूह भी यही चाहते थे कि नेपाली जनता को इतनी स्वतंत्रता अवश्य दी जानी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म में विश्वास रख सके या जो भी धर्म स्वचेतना से अपनाना चाहे उसकी स्वतंत्रता पर संविधान एंव राष्ट्र द्वारा बाध्यता नही लगाई जाये। परन्तु संवैधानिक सिफारिश समिति की दुर्बलता के कारण और राजनैतिक दलों द्वारा स्पष्ट एंव स्वच्छ निर्णय न ले पाने के कारण इस मुद्दे को नजरअदांज करते हुए संविधान में हिन्दू एंव धर्मान्तरण का मार्ग अपनाया गया।

विगत तेरह सालों में धर्म के नाम पर यद्यपि किसी प्रकार का दगां या हिंसक घटना नही हुई परन्तु ईसाई, मुस्लमान एंव बुद्ध धर्मावलम्बीयों के ऊपर एक अजीब प्रकार का दबाव रखा गया। धर्म परिवर्तन के मामले में ही सितम्बर, 1994 में 11 ईसाईयों को दो साल की कैद हुई एंव बाद में नरेश ने उन्हें तीन माह बाद माफ कर किया। तथा यह मामला अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुंच गया।[6]

---

4 Article 4, Clause 1, of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

5 Article 19, Clause 1, of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

6 Country Reports on Human Rights, Nepal, U.S. Department of State Human Rights Report 1998, see http://religiousfreedom.lib.virginia.edu

परन्तु राजनैतिक अस्थिरता के दौर में ऐसा कोई कदम नही उठाया गया जिससे इन धार्मिक अल्पसख्यकों को धर्म के मौलिक अधिकार मिले। नेपाल में धार्मिक बहुसख्यक वर्ग की राजनैतिक जागरूकता कम होने के कारण इस मामले पर उतना ध्यान नही दिया गया जिससे अल्पसख्यकों को धर्म के प्रति निर्बाध स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके।[7]

यद्यपि धर्म को लेकर अभी तक राष्ट्र में किसी प्रकार का साम्प्रदायिक दंगा नही हुआ है। लेकिन देश में हिन्दूत्व का प्रचार करना एंव राजनीतिक दलों द्वारा धर्म को राजनीति में लाने का प्रयास शुरू हो गया है। जो कि निश्चित रूप से देश की प्रगति एंव स्थिरता में बाधा है। नेपाल के संविधान में यद्यपि धर्म परिवर्तन के लिये मना किया गया है लेकिन संविधान अन्य धर्मो के अनुयायियों को धार्मिक स्वतंत्रता की पूर्ण अनुमति देता है। यदि इतिहास पर नजर डाली जाये तो हम पाते है कि हिमालय अधिराज्य के ये दो राष्ट्र, नेपाल एंव भूटान में अभी तक धार्मिक दंगे नही हुए है। जबकि दक्षिणी एशियाई क्षेत्र के अन्य राष्ट्रों में साम्प्रदायिक दंगे बडे पैमाने पर देखे गये है। अतः नेपाल के लोगो द्वारा इस नवीन संविधान की छत्रछाया में धर्म का दुरूपयोग निश्चित रूप से आगामी वर्षों में साम्प्रदायिक दंगो के होने का आभास देता है।

नागरिकता का मुद्दा

दूसरा मुद्दा जो संविधान के गठित होने के बाद देश की जनता एंव राजनीतिक दलों के सामने आया वह था नागरिकता के अधिकार का मामला। नेपाल में वहां के नागरिको को सरकार एक 'नागरिकता पत्र' प्रदान करती है जिसके आधार पर वह नेपाल में जमीन खरीद या बेच सकता है। इसके साथ ही साथ वह सरकारी पदों पर जा सकता है एंव देश में उच्च शिक्षा ग्रहण कर सकता है। वर्ष 1990 के संविधान में अनुच्छेद 8 एवं अनुच्छेद 9 में नागरिकता

---

[7] Mollica Dastider, *Muslims of Nepal's Terai,* Economic and Political Weekly, March 4, 2000, p.766.

के बारे में विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। अनुच्छेद 9 में नागरिकता ग्रहण करने के प्रावधान बताये गये है। इस अनुच्छेद के प्रथम अनुभाग में यह कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति इस संविधान के लागू (Commencement) हो जाने के बाद नेपाल राष्ट्र में जन्म लेता है और उनके पिता नेपाली नागरिक है तो वह व्यक्ति नेपाली नागरिक होगा। अनुच्छेद के दूसरे उपंभाग में कहा गया कि कोई भी शिशु जो नेपाली भू भाग में पाया जाता है और जिसके माता पिता के बारे मे कोई जानकारी नहीं है। इसलिये जब तक उसके माता पिता के बारे में पता नहीं लग जाता तब तक वह नेपाल की नागरिकता का वहन करेगा। अनुच्छेद के तीसरे उपभाग में कहा गया है कि नेपाल के क्षत्र में आने वाले भू भाग में रहने वाले लोग भी नेपाल के नागरिक कहलायेगें। अनुच्छेद के चौथे उपभाग में विदेशियों को नेपाल की नागरिकता प्राप्त करने के लिये अग्रलिखित विधियां बताई गई है– उन्हें नेपाली भाषा लिखना एवं पढना आना चाहिए, नेपाल के क्षेत्र के अन्दर उसे कार्यरत होना चाहिए, अन्य देश की नागरिकता का परित्याग करना होगा तथा नेपाल राष्ट्र में नागरिकता मिलने के पूर्व उसे 15 साल तक देश में रहना पडेगा।[8]

इस संविधान में नागरिकता की इन प्रावधानों से कुछ समस्याएं खडी हो गई। नेपाल के तराई अचंल में रहने वाले संजातीय समूहों के लोगों को राजनीतिक व सामाजिक कारणों के लिये उन्हे यह 'नागरिकता पत्र' प्रदान नही किया गया जिनमें मदहेशी समूह प्रमुख है।[9] इस विषय पर नेपाल की सद्भावना पार्टी सरकार के ऊपर काफी दबाव दे चुकी है। जिस कारण नब्बे के दशक की शुरूआत में एंव नई शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में यह मुद्दा पुनः उभरकर सामने आया। नब्बे के दशक की शुरूआत में यह प्रश्न था कि 'नागरिकता पत्र' किसे दिया जाये। 1979 और 1984 में हुई जनगणना में से नागरिकता के लिये किसे आधार बनाया जाये यह मुद्दा उठ खडा हुआ।

---

8 Article 9 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

9 Suman Pradhan, "Citizenship Row Festers in Nepal", *Asia Time Online*, October 19 2001, see www.atimes.com

नागरिकता की जरूरत सम्वत्ति एवं उत्तराधिकार जैसे मामलों में पडती है जबकि तराई क्षेत्रों में रहने वाले काफी व्यक्ति संविधान के इन प्रावधानों के कारण अपने ही देश में विदेशी की तरह चिन्हित हो गये। इस कारण इस मामले सुलझाने के लिये 1992 में 'Nepal Citizenship Regulation Act' पास किया गया। इसके अन्तर्गत 'ग्रामीण विकास परिषद' के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को यह शक्ति दी गई कि वे नागरिकता प्रमाण पत्र को जारी कर पायेगें। इसके अतिरिक्त किसी बाहरी व्यक्ति को इसके लिये उस अचंल की नगरपालिका के मेयर और उपमेयर की सिफारिश या संस्तुति की भी आवश्यकता होगी। परन्तु इस नागरिकता विनियम के संचालन में धीरे धीरे भ्रष्टाचार का फैलना प्रारंभ हुआ। मेयर, उपमेयर एवं अन्य सदस्यों द्वारा पक्षपातीय रूप से यह पत्र जारी हाने लगा। जिसके कारण देश में इसका विरोध होने लगा।[10]

जब संसद में इस नागरिकता बिल को प्रस्तुत किया गया एंव जब यह सहमति के लिये नरेश के पास भेजा गया, तब नरेश ने इसकी वैधता का परीक्षण करने के लिये इसे सर्वोच्च न्यायालय के पास भेज दिया। संविधान के अनुसार वैधता जांचने के लिये नरेश एकमात्र वित्त बिलों को ही सर्वोच्च न्यायालय में पेश कर सकते है। सामान्य बिल ज्यादातर संयुक्त सत्र के समक्ष ही पेश होते है। इस बिल को सर्वोच्च न्यायालय ने भ्रष्टाचार के आधार पर 'असंवैधानिक' घोषित कर दिया। नेपाल के संविधान में नागरिकता की जो पहचान है उसमें संशोधन लाने की जो मांग की गई है इससे यह शंका पैदा होती है कि इन प्रावधानों को इस्तेमाल करके भारी संख्या में विदेशी नेपाल के 'नागरिकता पत्र' को हासिल कर पायेगें। जिससे नेपाल के सामाजिक और राजनीतिक सन्तुलन को खतरा पहुंच सकता है। यह संशोधन अभी तक नही

---

[10] Hari Bansh Jha, *The Terai and National Integration in Nepal,* Centre for Economic & Technical Studies and Friedrich Ebert Stiftung. Kathmandu, 1993,pp. 70-71

आ पाया क्योंकि गैर – राजनीतिक दल एक आम सहमति से इस पर कोई निर्णय नही ले सके। इस कारण यह मुद्दा अभी तक चल रहा है।

यह एक ऐसा बिल है जो सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार संविधान में परिवर्तन है। जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 8(ए) में नागरिकता के बारे में बताया गया यह बिल उसके विपरीत जाता है। नेपाली नागरिकता बिल में नागरिकता की जो परिभाषा दी गई है वह 1962 में दी गई परिभाषा से मिलती है। अतः इस बिल के आने के बाद भी नागरिकता के मामले में 1962 एंव 1990 के दौरान ज्यादा अन्तर नही रहा। इस बिल ने यद्यपि संविधान में संशोधन नही किया परन्तु संवैधानिक कानूनों के ऊपर संशय अवश्य पैदा कर दिया।[11]

यद्यपि 1990 के संविधान में नागरिकता संबधी व्यवस्था 1962 के संविधान एंव नागरिकता एक्ट 1964 के आधार पर बनाई गई। परन्तु नागरिकता के मामले में काफी जटिलताएं देखी गई। जिसमें पहली समस्या जनगणना को लेकर थी, यहां समस्या यह थी कि जनगणना प्रारंभ करने का आधारभूत साल किसे माना जाये। जिससे कि नागरिकता प्रमाण पत्र जारी करने में सुविधा हो। वहीं दूसरी तरफ इस संविधान में नागरिकता की पहचान जन्म से नही वरन वंशज के आधार की गई। किन्तु काफी बार यह प्रयास किया गया कि वंशज के आधार पर नागरिकता मानने की बजाय जन्म को नागरिकता का आधार बनाया जाये। इस एकट के पास होने से नागरिकता पत्र प्रप्त करने वालों के ऊपर से कुछ हद तक प्रतिबंध हट गये। यद्यपि यह उनके लिये एक राहतपूर्ण स्थिति थी परन्तु इसके साथ ही कुछ समस्याएं भी आ खडी हुई। नेपाल में करीब तीन लाख शरणार्थी जो कि तराई क्षेत्र एंव पूर्वी क्षेत्र में बसे हुए थे। उनको इस छूट के कारण नेपाली नागरिकता आसान हो गया। लेकिन इससे भारी मात्रा में शरणार्थी समस्या बढ जाएगी क्योकि नेपाल देश की सीमाएं खुली हुई है। तथा साथ में आपराधिक गतिविधियां भी बढ जाएंगी। अतः कहा जा

---

[11] *Suruchi*, Kathmandu, March 7 – 9 1992, Nepal Press Report, Vol 46.

सकता है कि इस समस्या से राष्ट्र की सम्प्रभुता एंव सुरक्षा को खतरा पहुंच सकता है।

नेपाल में इस नागरिकता के मामले पर पहले भी और वर्तमान में भी सवाल उठाये जा रहे है। इसके पीछे दो प्रमुख कारण है, पहला यह कि तराई अंचल में रहने वाले लोग जो कि भारतीय मूल के है। उनकी परम्पराएं, संस्कृति एंव नस्लीयता भारत से अधिक मिलती है जबकि नेपाल से बहुत कम मिलती है। दुर्भाग्यवश, भारत में कुछ ऐसे राजनीतिक दलों के नेता है जो कि इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के हितों के कारण उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखते है। जो कि नेपाली सरकार एंव वहां के राजनीतिक दलों के लिये असहनीय है। अतः नेपाल की सरकार इस तरह के व्यवहार को देश की आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप बताती है। इस कारण काफी बार यह कोशिश की गई कि तराई अंचल में रहने वाले भारतीय मूल के लोग को नेपाल की नागरिकता प्रदान न की जाये। दूसरा मुददा जिसमें नेपाल में अवस्थित भूटान के शरणार्थियों की समस्या के बारे में बताया गया है। यद्यपि इसके ऊपर काफी समझौते और वार्तायें हो चुकी है। परन्तु अभी भी इस मुदद् को लेकर भूटान के साथ नेपाल के संबध अच्छे नही हो पाये है।

महाकाली समझौते का मुद्दा

इसके उपरान्त जो मुद्दा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खडा हुआ वह था महाकाली समझौता। 1996 में शेर बहादुर देउबा जो कि उस समय नेपाल के प्रधानमंत्री थे, उन्होनें भारत यात्रा के दौरान महाकाली समझौते को निश्चित किया । जो कि भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी और नेपाल के विदेश मंत्री प्रकाश चन्द्र लोहानी द्वारा जनवरी, 1996 में हस्ताक्षरित की गई।[12] लेकिन जब नेपाली प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा भारत में इस संधि को निश्चित

[12] Sangeeta Thapliyal, *Mahakali Accord: An Integrated Approch to Develop Water Resources,* Strategic Analysis, June 1996, p.483

कर रहे थे तब नेपाल में विपक्षी दलों ने प्रधानमंत्री के इस कदम को गलत बताते हुए कहा कि देउबा ने देश के हितों को बेच दिया है। तथा प्रधानमंत्री देउबा के नेपाल वापस लौटने पर इन दलों ने धरना एंव हडतालों के माध्यम से विरोध प्रकट किया। इसी दौरान देउबा के नेतृत्व में एक आयोग का गठन किया गया जो के महाकाली संधि की वैधता और नेपाल के हित को जांचेगा। इस आयोग की अध्यक्षता के. पी. ओली कर रहे थे। अतः इसे ओली आयोग कहा गया। तथा यह आयोग इस संधि पर एक विस्तृत योजना रिपोर्ट (Detail Project Report) को तैयार करेगा। ओली आयोग ने अगस्त, 1996 में इस संधि में 26 गलतियां निकाली और उनका स्पष्टीकरण भारतीय जल संसाधन मंत्रालय से मांगा।[13] इन गलतियों में प्रमुख थे– पानी बटंवारे में नेपाल का उल्लेख जबकि भारत का उल्लेख नहीं किया गया है, काला पानी नामक स्थान पर भारतीय सेना की तैनातगी, तथा अन्य और कई मुद्दे भी थे। भारत की तरफ से यद्यपि इन बातों का स्पष्टीकरण नहीं किया गया लेकिन यह जोर दिया गया कि बातचीतों से ही इन गलतियों को सुधारा जा सकता है तथा दोनों तरफ से पैदा हुई गलतफहमियों को दूर किया जा सकता है।

इस समय के दौरान नेपाल की सरकार में दो अलग अलग दल इस संधि के मामले के कारण बन गये । इन दोनों दलों में संधि को लेकर गहरा मतभेद था। नेपाल सरकार के कुछ दल यह मांग कर रहे थे कि जब तक भारत इस संधि के संदर्भ में स्पष्टीकरण नहीं करेगा तब तक इस संधि को प्रमाणित (Ratify) नहीं किया जायेगा। वहीं दूसरे दल यह मांग कर रहे थे कि संधि के प्रमाणित होने के बाद इन गलतियों को सुधारा जाये। इसी द्वन्द के चलते 20, सितम्बर 1996 में 29 सदस्यों वाली केन्द्रीय समिति द्वारा इस संधि को प्रमाणित किया गया। इस समिति में चुनाव के दौरान, 17 बहुमत मतों के

---

[13] Dipak Gyawali and Ajaya Dixit, "Mahakali Impasse: A Futile Paradigm's Dequested Travails", in Dhruba Kumar (ed), *Domestic Conflict and Crisis of Governability in Nepal* (Kathmandu, Tribhuvan University, Center for Nepal and Asian Studies, 2000), p. 256.

विरूद्ध 16 अल्पमत मतों के होने से मात्र एक मत ज्यादा होने से यह संधि प्रमाणित की गई। यद्यपि मतों का अन्तर काफी कम रहा जिस कारण इसे काफी राजनीतिक दलों द्वारा 'जाली बहुमत' कहा गया।[14] इसके पश्चात यह मुद्दा संसद में पहुंचा जहां इस पर भारी विचार विमर्श हुआ। तथा सरकारी पक्ष के स्पष्टीकरण के बाद संयुक्त सत्र के 265 सदस्यों में से 220 सदस्यों ने इसे स्वीकृति प्रदान कर दे दी तथा इसे अस्थाई निश्चय (Provisonal Ratification) माना गया।[15] यहां पर संसद के दो तिहाई बहुमत का महत्व देश के हितों को संरक्षित करता है। इसी कारण इस प्रावधान का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 126 में विस्तृत तौर पर किया गया है। इसके अन्तर्गत कहा गया है कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संधि या समझौते को प्रमाणित करने, स्वीकार्य एवं सहमति प्राप्त होने के लिये संविधान में दो तरह के प्रावधान वर्णित है। प्रथम, जो समझौते शांति एवं मित्रता से, रक्षा संबधों से, नेपाल की सीमा से एवं देश के प्राकृतिक संसाधनों से जुडे हों उन्हें प्रमाणित करवाने के लिये इन्हें संसद के संयुक्त सत्र में दो तिहाई बहुमत से पारित करवाना आवश्यक होगा। द्वितीय, इन सभी को जनप्रतिनिधित्व सभा में साधारण बहुमत से पारित कियें जायेंगे।[16]

यदि गौर किया जाय तो धारा 126 पूरी तरह से भारत राष्ट्र पर केन्द्रित है।[17] क्योकि नेपाल अगर नदी संबधित या नदी के जल से संबधित संधि या समझौता करे तो वह भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश से इस संबध में कोई समझौता नही कर सकता। क्योकि यह उसकी भौगोलिक विवशता है। तथा चीन से यहां कोई मुख्य नदी नही गुजरती। ऐसे अनुच्छेद संविधान में रखना एक नकारात्मक दृष्टिकोण दर्शाता है। नेपाल के लिये एक बहुउद्देशीय जल परियोजना बनाना मुश्किल ही नही नामुंकिन है। क्योकि इसके लिये आधुनिक

---

[14] Ibid, p. 259.
[15] Ibid, p. 260.
[16] Article 126 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November, 1990.
[17] S Chandra Sekharan, "Is Nepal Still in Search of a Political Order: 1990 Constitution and Thereafter", *South Asian Analysis Group*, Paper No. 481, 24 June 2002, see www.saag.org

तकनीकी के साथ – साथ काफी धन की भी आवश्यकता है। नेपाल इस कारण वित्त सहायता के बगैर अपने राष्ट्र में स्थित असीमित जल संसाधनों को इस्तेमाल नही कर सकता। परन्तु धारा 126 के गलत इस्तेमाल से विगत तेरह सालों में कोई भी समझौता पूरी तरह से सफल नही हो पाया जो नेपाल के हित के लिये बडी रूकावट हे। धारा 126 स्वंय को ही अगर परिपक्वता के साथ इस्तेमाल किया जाय तब ही नेपाल के लिये यह अनुच्छेद हितकारी साबित होगा।

4, अक्टुबर 2002 की घटना

वर्ष 2002 में नरेश ज्ञानेन्द्र ने संविधान के दो अनुच्छेदों (127 व 35) का इस्तेमाल करते हुए राजनीतिक अस्थिरता में एक नवीन मोड ला दिया। नरेश ज्ञानेन्द्र ने निर्वाचित नेता शेर बहादुर देउबा को पदच्युत करके इस संविधान की आत्मा को चोट पहुंचाई है। जिससे नरेश देश की मुख्य कार्यपालिका पर सवोच्च स्थिति में आ गये।

अनुच्छेद 35.2 में कहा गया है कि संविधान के अर्न्तगत जो नरेश की शक्तियां है वे मंत्रिपरिषद की सलाह व सहमति से प्रयोग में लाई जायेगी तथा इसके पश्चात ये प्रधानमंत्री के माध्यम से क्रियान्वित की जायेगीं। वहीं अनुच्छेद 127 बताता है कि यदि संविधान में कही कोई परेशानी या समस्या उठ खडी होती है तो नरेश उसे सुलझायेगें तथा उसे संसद के समक्ष प्रस्तुत करेगें।[18] जब प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा ने अनुच्छेद 34 लगाने की जगह पर चुनाव रद्द करने की बात की एंव धारा 127 के प्रावधान को प्रयोग में लाने की नरेश से सिफारिश की। परन्तु नरेश ने अनुच्छेद 35.2 का इस्तेमाल करके सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद एंव देउबा सरकार को बर्खास्त कर दिया।[19] एंव देउबा के स्थान पर नरेश लोकेन्द्र बहादुर चांद को लाये तथा उन्हें प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त

---

[18] Article 127 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.
[19] Article 35, Clause 2 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

किया। शेर बहादुर देउबा जो कि जनता द्वारा चुने हुए नेता थे उनके इस तरीके से बर्खास्त होने से एक संवैधानिक संकट अवश्य ही राष्ट्र के समक्ष आ गया। इस घटना के बाद प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं का यह कहना था कि इस बात में कोई शक नही है कि यह कदम असंवैधानिक था और एक झटके में ही 1990 के संविधान को नरेश द्वारा नजरअन्दाज किया गया।

अतः इस घटना के बाद 1990 के संविधान के ऊपर एक वैधता का प्रश्न अवश्य आ जाता है। एंव इसके अतिरिक्त यह बात भी उठती है कि यह संविधान सरकार चलाने में कितना मददगार होगा। इसी समय के दौरान कम्यूनिस्ट (UML) पार्टी के वरिष्ठ नेता रामचन्द्र उप्रेती का वक्त्व्य था कि, 'हमारे देश का संविधान नरेश को कार्यपालिका की शक्तियों को अपने हाथ में लेने की अनुमति नही देता'।[20] उप्रेती की यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है जब हम संविधान के अनुच्छेद 35 के दूसरे भाग पर गौर करते है। जहां स्पष्ट रूप से यह वर्णित किया गया है कि नरेश को प्रत्येक कदम उठाने से पहले मंत्रिपरिषद की सलाह एंव सहमति लेनी होगी।[21] परन्तु 4 अक्टुबर की घटना इस अनुच्छेद के विपरीत जाता है। बल्कि यहां यह कहना उपयुक्त होगा कि कार्यपालिका की शक्ति मंत्रिपरिषद की जिम्मेदारी है न कि नरेश की। इस आकसमिक असंवैधानिक घटना को और अधिक विश्लेषित रूप से समझने के लिये यहां बर्खास्त प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा का कथन उल्लेखनीय है, 'मैं हतप्रभ हूं क्योंकि जहां तक मैं समझता नरेश मुझे संवैधानिक आधार पर नही हटा सकते'।[22] तथा इसी घटना के सन्र्दभ में पूर्व मुख्य न्यायधीश विश्वनाथ उपाध्याय ने राजनीतिक दलों की दुर्बलताओं को उजागर करते हुए कहा कि, 'नरेश द्वारा लिया गया यह कदम राजनीतिक दलों की खामोशी का परिणाम है। ये राजनीतिक दल इतने दिनों तक नरेश एंव नरेश के कदमों को

---

[20] Sudipta Chanda, "Parties Seethe at Deuba Ouster", *Statesman News Service*, October 5 2002.
[21] Article 35 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.
[22] "It's Unconstitutional: Sher Bahadur Deuba", *Press Trust of India*, Kathmandu, 5 October 2002.

संवैधानिक रूप से वैधता प्रदान करते रहे। यद्यपि उनमें काफी सारे ऐसे कदम थे जो संविधान को पूरी तरह से दरकिनार करते है'।[23] उपाध्याय के इस कथन से राजनीतिक दलों की विवशता झलकती है तथा नरेश का शासन व्यवस्था पर प्रभुत्वशील होने की कोशिश का पता चलता है। राजनीतिक दल लोकतंत्र के मूल आधार है और उनके कमजोर होने से एंव संकट के समय एक राय न होने के कारण राष्ट्र में लोकतंत्र का मजबूत होना मुश्किल है। इस कारण गणेश मानसिंह नेपाल के लोकतंत्र को 'शिशु लोकतंत्र' के रूप में देखते थे।[24] अतः इस प्रकार के कदम लोकतंत्र की प्रगति में बाधा डालते है।

नेपाल के वर्तमान दौर में हम एक त्रिकोणात्मक संघर्ष देखते है जो कि राष्ट्र के समक्ष एक राजनीतिक संकट के रूप में विधमान है। इस संघर्ष के तीन पक्ष है- नरेश, राजनीतिक दल तथा माओवादी कम्यूनिस्ट। तथा ये तीनों ही पक्ष अपने अलग-अलग राजनीतिक उददे्श्यों के लिये काम कर रहे है। अतः काफी बार यह देखा गया है कि अपने हितों को पूरा करने के लिये इन पक्षों ने राष्ट्रीय हितों एंव संविधान को क्षति पहुचाई है।अन्ततः यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक, सामाजिक एंव आर्थिक परिस्थिति के शक्ति पुंज विखंडित रहते है तो उस राजनीति में संविधान सफल तरीके से काम करने में असमर्थ रहता है।

संशोधन के प्रयास

संविधान के अनुच्छेद 116 के प्रथम भाग में यह स्पष्ट कहा गया है कि संविधान में संशोधन लाने के लिये कोई भी बिल ऐसा नही होना चाहिये जो संविधान की प्रस्तावना की आत्मा को किसी भी तरह से हानि पहुंचाये। सर्वोच्च न्यायालय संशोधन प्रस्ताव के लिये पेश बिल की जांच करेगा कि वह

---

[23] "Nothing New About Violation of Constitution by Monarchy: Former CJ", *The Kathmadu Post*, Kathmandu, Thursday, November 28 2002.

[24] Somnath Ghimire, "Nepal's Baby Democracy!", *The Nepal Digest*, Year 15, Volume I, Issue 1, Friday January 23, 2004 see www.nepalicongress.org.np

संवैधानिक है या असंवैधानिक, अतः इस बात पर अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय ही करेगा। नेपाल की जनता विभिन्न संजातीय समूह, आर्थिक समूह, सामाजिक समूह और धार्मिक समूहों में बंटी हुई है तथा ये शोषित वर्ग इसे उच्च जाति द्वारा बनाया गया संविधान मानते है जो एक हिन्दूवादी नेपाली राष्ट्र को परिभाषित करता है।[25]

जिस कारण इन तेरह सालों में वह नजर आया जो नेपाल के इतिहास में पहले कभी नजर नही आया, वह यह था कि राजनीतिक ढांचा बदलने की कोशिश में सबसे ज्यादा उग्रता जनता के अंदर पैदा हुई। जो कि विभिन्न तरीके से नेपाल में दिखाई दिया जैसे कभी छात्र आन्दोलन के रूप में या फिर कभी माओवादी आन्दोलन के रूप में।

यदि सभी मांगो को परखा जाय तो हम पायेगें कि जन आन्दोलन के बाद जो संवैधानिक राजतंत्र की बात कही गई जिसमें वर्णित था कि सम्प्रभुता नरेश की बजाय जनता में निहित होगी।[26] इसी कारण 1990 के संविधान की प्रस्तावना में संवैधानिक राजतंत्र का वर्णन किया परन्तु इस प्रावधान का वास्तविक रूप में इस्तेमाल न होना ही सबसे ज्यादा उग्र असंतोष व अस्थिरता का कारण बना। नरेश जो कि पंचायती लोकतंत्र के समय संवैधानिक रूप से काफी शक्तिशाली थे, 1990 के संविधान द्वारा उनकी क्षमता को सीमित करने की कोशिश की गई है। लेकिन पूर्व में उल्लेख की गई घटना से यह पता चलता है कि संविधान में ऐसा कही वर्णन नही है कि नरेश की क्षमता कहां खत्म होती है और जनता की क्षमता कहां शुरू होती है। किसी भी मुद्दे पर नरेश की बात ही अन्तिम निर्णय के रूप में अभी तक मानी जाने के कारण नेपाल के संविधान में जो संवैधानिक राजतंत्र का चरित्र है इसी चरित्र पर जनता के समक्ष प्रश्न खडा होता है। नागरिकता बिल पास करने बाद यह बात स्पष्ट हो गई थी कि नरेश अगर चाहे तो संसद की अनुमति के बगैर सर्वोच्च

---

[25] Yash Ghai, "Crisis Beyond Legality", *Himal*, November 2003, p. 64.

[26] Preamble and Article 4, Clause 1 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990

न्यायालय की सलाह ले सकते है जिसका कि संविधान में कही भी उल्लेख नही है। संसद जो कि जनता के चुने हुए सदस्यों से बनती है और लोकतंत्र का आधार भी है वह आज नेपाल में सबसे कमजोर राजनीतिक नायक है।

संविधान और वास्तविक राजनीतिक दृश्य में अन्तर एंव असन्तुलन यह प्रदर्शित करता है कि संविधान में जबरदस्त परिवर्तन आना चाहिए। अगर संविधान को बडे पैमाने पर संशोधित न किया जा सके तो इस संविधान को रखते हुए एक पृथक संवैधानिक सभा की स्थापना की जाये जो एक नवीन संविधान की रचना करे जो कि नेपाल की जनता के हित में हो। अगर यह नही किया जा सके तो सारे राजनीतिक दलों को एकजुट होकर नेपाल के राजनैतिक चरित्र को परखते हुए संविधान में संशोधन लाने की कोशिश करनी चाहिए। जिससे हो सकता है कि 1990 के संविधान में अल्प या प्रमुख परिवर्तन लाये जा सकते है। इन्ही उददे्श्य को पूरा करने के लिये देश में कुछ आन्दोलन तेजी से सक्रिय हुए। इनमें प्रमुख रूप से छात्र आन्दोलन एंव राजनीतिक दलों द्वारा संचालित आन्दोलन उल्लेखनीय है। यद्यपि राज़नीतिक दलों के गठबंधन द्वारा यह आन्दोलन 4 अक्टुबर 2002 को नरेश द्वारा लिये गये असंवैधानिक कदम के विरोध में प्रारंभ किया गया था। इस गठबंधन में नेपाल के पांच प्रमुख राजनीतिक दल है परन्तु इसका नेतृत्व नेपाली कांग्रेस व कम्यूनिस्ट (UML) पार्टी ही कर रहे है तथा लोकतंत्र को बहाल करना इनका केन्द्रीय मुददा था। दूसरा आन्दोलन सरकार की दमनकारी नीतियों के कारण उत्पन्न हुआ। जनवरी 2004 में सरकार द्वारा तीन छात्र नेताओं को राजद्रोह के आरोप में कैद कर लिया गया। जिसके फलस्वरूप छात्रो का एक बडा समूह उत्तेजित हो गया एंव सभी छात्र सडकों पर आ गये। इन छात्र आन्दोलनकारियों का कहना था कि, 'सरकार चाहे नेपाली कांग्रेस की बने या वामपंथीयों की बने परन्तु हमारा संघर्ष जनतंत्र की स्थापना के लिये जारी

रहेगा'।[27] इन लोकतांत्रिक दबावों के चलते एक बारः नरेश ने पुनः शेर बहादुर देउबा को प्रधानमंत्री बना दिया है। तथा साथ ही वर्तमान में माओवादियों का जाल देश के कोने कोने में फैल चुका है अतः इस संवैधानिक संकट के दौर में निष्पक्ष एंव स्वच्छ चुनाव करवा पाना नेपाल प्रधानमंत्री के लिए काफी मुश्किल है। तथा इसी कारण वर्तमान प्रधानमंत्री को वर्ष 2002 में बर्खास्त किया गया था। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक दलों एंव नरेश के मध्य सहयोग की भावना न होने के कारण एक अस्थिर एंव अनिश्चित राजनीतिक वातावरण नजर आता है।

संविधान में आंशिक परिवर्तन, संशोधन एंव सुधार

सन् 1990 के संविधान में आधारभूत संशोधन या परिवर्तन नही लाये जा सके। परन्तु राष्ट्र में सरकार को ठीक प्रकार से चलाने के लिये सरकारी संरचना में अवश्य सुधार लाये गये। जैसे चुनावों के नियमों में थोडा परिवर्तन लाया गयो। यहां पर चुनावों में खडे होने वाले उम्मीदवारो की योग्यता एंव अयोग्यता के निर्धारण की बात की गई। जिसके संबध में उचित कदम उठाये गये। अतः इसके लिये 1991 के अप्रेल महीने के दूसरे सप्ताह में 'जनप्रतिनिधि सभा एक्ट(अधिनियम)' पास किया गया। जिसमें यह साफ कहा गया कि कोई भी व्यक्ति अगर चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा दोषी घोषित है वे 6 साल तक चुनाव में खडे नही हो सकते। यह भी कहा गया कि कोई भी व्यक्ति अगर किसी भी आपराधिक मामले के कारण दो साल या उससे ज्यादा की सजा पाता है तो वह अपनी सजा समाप्त होने के बाद 6 साल तक चुनाव में खडे नही हो पायेगें। यह भी कहा गया कि कोई भी मतदाता अन्य किसी मतदाता

---

[27] *Public Opinion Trends Analyses and News Service*, Vol. X, No. 1, January 27 2004, p. 202; *Public Opinion Trends Analyses and News Service*, Vol. X, No. 29, May 31 2004, p. 212, यहां इन घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

के नाम पर मत नही डाल सकता। साथ ही यह भी कहा गया कि प्रत्येक चुनावी उम्मीदवार 75 हजार रूपये तक खर्च कर सकता है।[28]

इसी साल अप्रेल महीने में और भी एक्ट आये जो संविधान के ढांचे को न छूते हुए देश में नये सुधार लेकर आये। इसी क्रम में 12, अप्रेल 1991 में 'जन सुरक्षा एक्ट(अधिनियम)' या 'प्रथम संशोधन' लाया गया। इसमें यह कहा गया कि कोई भी नागरिक या व्यक्ति अगर देश की सुरक्षा, शान्ति एंव व्यवस्था को क्षति पहुंचाता है अथवा नेपाल और अन्य देश के साथ संबधों में रूकावट या बाधा पहुंचाता है, तब गृह मंत्रालय द्वारा नजरबंदी का आदेश जारी किया जायेगा जिससे यह व्यक्ति नेपाल के भौगोलिक क्षेत्र से बाहर न जा सके। इस एक्ट में यह स्पष्ट कहा गया कि आरापी व्यक्ति को नजरबंद करने के कारणों का विवरण भी दिया जायेगा।[29]

इसी प्रकार और भी सुधार लाये गये एंव शासकीय संरचना की पुर्नव्याख्या की गई। जैसे 'नेपाल विशेष सेवा एक्ट' पारित किया गया जिसमें एक नये अनुसंधान विभाग की स्थापना के बारे में कहा गया। जो कि राष्ट्र के सेवा विभागों की शक्तियों, कार्यक्रमों एंव समयावधि के बारे में स्पष्ट उल्लेख करता है।[30]

6, जून 1991 को 'राष्ट्रीय सभा एक्ट (अधिनियम)' लाया गया जिसमें यह कहा गया कि राष्ट्रीय सभा में किस प्रकार सदस्यों को चुना जायेगा। यह भी कहा गया कि सभा के सदस्य की आयु पैंतीस वर्ष से कम होनी चाहिये। इस राष्ट्रीय सभा में जो सदस्य प्रतिनिधिसभा से चुनकर आएगें उनमें 32 सदस्यों के अतिरिक्त तीन महिला सदस्य होंगी। एंव तीन सदस्य प्रत्येक क्षेत्रीय विकास विभाग से आएगें। इसके अतिरिक्त चुनाव के नियमों एवं विधियों के बारे में भी बताया गया।[31]

---

[28] *Nepal Rajapatra*, Kathmandu, April 15 1991, Nepal Press Digest, Vol 35, No 15.
[29] *Nepal Rajapatra*, Kathmandu, May 13 1991, Nepal Press Digest, Vol 35, No 19.
[30] Ibid.
[31] *Nepal Rajapatra*, Kathmandu, June 24 1991, Nepal Press Digest, Vol 35, No 25.

इन एक्ट (अधिनियम) के अलावा बिल भी पास किये गये जो कि नरेश की क्षमता को थोडी बहुत अवश्य घटाते है। 7, जुलाई 1991 में एक ऐसा बिल पास किया गया जिसमें कहा गया कि नरेश की मोहर के अतिरिक्त उनके मुख्य सचिव के हस्ताक्षर किसी भी बिल को पास होने के लिये जरूरी है जो कि पहले नही था। यह एक प्रकार से संवैधानिक राजतंत्र को मजबूत करता है। इस बिल को 'शाही मोहर बिल' के नाम से जाना गया।[32]

1990 के संविधान के मौलिक अधिकारों में सम्पत्ति के अधिकार के बारे में कहा गया है कि राष्ट्र जनहित के अतिरिक्त अन्य निजी सम्पत्ति या जमीन को अपने कब्जे में नही ले सकता। इन प्रावधानों के संविधान में होने के बावजूद केशव बादल के नेतृत्व में एक भूमि सुधार आयोग की स्थापना 16, जनवरी 1993 में की गई। इस आयोग का मुख्य कार्य यह था कि कैसे गरीब किसानों एंव काश्तकारों के मध्य असमान भूमि का समान वितरण किया जाय। परन्तु यह मौलिक अधिकारों में दिये गये सम्पत्ति के अधिकार के खिलाफ जाता है। परन्तु फिर भी समाज में समानता लाने के लिये इस तरह के वितरण की आवश्यकता थी। इसी कारण इस आयोग की स्थापना की गई थी। लेकिन राजनीतिक दलों के नेताओं ने काफी भारी मात्रा में भूस्वामियों का सर्मथन पाया। जिसके परिणामस्वरूप इस आयोग को पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नही हो सकी।[33]

निष्कर्षतः हम 1990 के संविधान के पहलुओं एंव चरित्र को देखते हुए यह कह सकते है कि नेपाल के राजनीतिक चरित्र की अस्थिरता ही नेपाल के इस नवीन संविधान के ऊपर परिलक्षित होती हुई नजर आई। यदि 1990 के प्रारम्भिक वर्षो में ही एक संवैधानिक सभा की रचना करके नये संविधान का निमार्ण की जाती तो इतनी अत्यधिक सुधार एंव संशोधन की मांगें सामने नही आती। वही शायद यह भी हो सकता था कि जब संविधान में संशोधन करने की मांगें आती तो उन्हे विचार और परामर्श द्वारा पूरा कर लिया जाता। परन्तु

---

[32] *Gorkhapatra*, Kathmandu, July 15 1991, Nepal Press Digest, Vol 35, No 28.
[33] *Gorkhapatra* Kathmandu, January 16 1995, Nepal Press Digest, Vol 39, No 3.

राष्ट्र के शक्ति केन्द्रण पुंजो की स्थिति पृथक – पृथक होने के कारण तथा उनके एकजुट न हो पाने के कारण संविधान में किसी भी प्रकार का प्रमुख परिवर्तन या आधारभूत परिवर्तन नही लाया जा सकता।

यद्यपि यह संविधान जो बनाया गया था वह भारत एंव चीन के अनुरूप बनाया गया था। परन्तु न तो भारत में और न ही चीन में नेपाल के राजनीतिक प्रवृति नजर आती है। क्योंकि न चीन में राजतंत्र है और न भारत में नेपाल जैसे शिशु लोकतंत्र ही है। इसी कारण नेपाल में इस अस्थिर राजनीतिक प्रवृति को नजरअंदाज करते हुए एक ऐसे संविधान को बनाया गया जो राष्ट्र में राजनीतिक स्थिरता ला सके। वही दूसरी तरफ नजर डाले तो हम पाते है कि जितना संवैधानिक सुधारों को लेकर मांगें उठी वैसा कुछ भी सुधार नही हुआ। तथा इस तथ्य के पीछे छिपे कारणों को जांचा जाये तो हम पाते है कि दो ही प्रमुख कारण है।

प्रथम, राजनीतिक नेताओं की अपरिपक्वता और संवैधानिक लोकतंत्र के साथ प्रक्रियात्मक सामंजस्यता का अभाव।

द्वितीय, जनता की राजनीतिक चेतना के अभाव के कारण जो भी संवैधानिक संशोधन की मांग की गई उसमें एकजुटता का अभाव होने के कारण प्रत्येक मांग बिखर कर रह गई।

अतः संविधान में संशोधन लाने के लिये जनता को राजनीतिक रूप से सक्रिय भागीदार बनना पडेगा एंव राजनीति की पेचीदगियों को समझना होगा। जिससे संशोधन संविधान में आसानी से लाये जा सकेगें एंव इस तरह संविधान में गतिशीलता आयेगी। अतः इस प्रकार संविधान राजनीतिक स्थिरता लाने में और जनआकांक्षाओं को पूर्ण करने में सफल होगा।

अध्याय 4

1990 के संविधान की उपलब्धियाँ और कमजोरियां

किसी भी राष्ट्र के संविधान की उपलब्धियां और सफलताएं उस राष्ट्र के शासकों एवं शासितों के स्थापित सामंजस्य पर निर्भर करती है। तथा वह संविधान देश में राजनीतिक व्यवस्था को कितने सफल तरीके से संचालित करता है यह उस संविधान की क्षमता पर निर्भर करता है। नेपाल में 1948 से संवैधानिक प्रक्रिया प्रारंभ हुई एवं इसके साथ ही लोकतंत्र की हवाओं का आगमन शुरू हो गया। यद्यपि नेपाल का संवैधानिक इतिहास बाकी देशों के संवैधानिक लोकतंत्रो से काफी हद तक अलग है। यहां संविधान में संशोधन करने की बजाय नित नये-नये संविधानों को लाया गया। शस्त्रा दत्ता पंत ने अपनी पुस्तक *'Comparative Constitution of Nepal'* में यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि जितनी बार नेपाल में संवैधानिक संशोधन नहीं लाये गये उससे कहीं ज्यादा नवीन संविधानों को लाया गया है।[1] वर्ष 1990 में नेपाल में पांचवे संविधान का निर्माण हुआ। परन्तु यह संविधान विगत संविधानों से काफी हद तक अलग है। इस संविधान की सबसे प्रमुख बात यह थी कि इसमें पहली बार सम्प्रभुता नरेश में निहित न होकर जनता में निहित की गई। विगत संविधानों के संचालन के समक्ष काफी कठिनाइयां आई जिसका प्रमुख कारण था– नरेश, राजनीतिक दलों एवं जनता के मध्य आपसी समझ बूझ का अभाव। वहीं 1990 का साल सघंर्षशील राजनीति का अन्त करता है एवं मेल मिलाप व समझौते के काल को प्रारंभ करता है। जन आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे नेता वर्ग अर्थात लोकतांत्रिक शक्तियां एवं राजप्रासाद (राजतंत्र) दोनों ने ही इस समय के दौरान अपनी-अपनी स्थिति को नियन्त्रित किया एवं एक दूसरे के लिये स्थान छोडा, जो कि समझौतापूर्ण व्यवहार का परिचायक है। जिसके

---

[1] Shastra Dutta Pant, *Comparative Constitutions of Nepal* (Kathmandu, SIRUD, 2001), p. 212.

परिणामस्वरूप सन् 1990 के संविधान में राजतंत्र एंव बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का सममिश्रण मिलता है। इस नवीन संविधान द्वारा संस्थागत परिवर्तन भी आये जैसे द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका, नरेश की शक्तियां सीमित, स्वतंत्र न्यायपालिका तथा सम्प्रभुता नरेश में नहीं वरन जनता में निहित होना इत्यादि। अतः इस प्रकार इस नये संविधान में पहली बार लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये प्रायः सभी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का समावेश किया गया।[2]

परन्तु संविधान की सफलता उसके लागू होने के पश्चात ही सामने आती है। सन् 1990 के संविधान के कई प्रावधानों में आधारभूत कमी होने के कारण संविधान के समक्ष वर्तमान में कई समस्याएं उठ खडी हुई है। इस संविधान के निर्माण में जनता का उचित प्रतिनिधित्व न होने के कारण इस संविधान की वैधता पर भी प्रश्न उठते है। संविधान की कमियां क्रमिक रूप से सामने आना प्रारंभ हो गई है जिसके कारण संवैधानिक संकट पुनः शुरू हो गया है।

संविधान की उपलब्धियां

लोकतंत्र का आगमन

सन् 1990 का संविधान नेपाल में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना करता है। जिसमें बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की नींव रखी गई। यह संविधान विगत पंचायती शासन व्यवस्था के विरोध में जन आन्दोलन के माध्यम से हटाये जाने के पश्चात आता है। सन् 1960 में नरेश महेन्द्र द्वारा शासन शक्तियों को अपने हाथ में लेकर शासन करना एक निरंकुश शासन का प्रमाण देता है। पंचायती व्यवस्था जो कि नरेश महेन्द्र द्वारा स्थापित की गई जिसमें लोकतंत्र का मात्र दिखावा था। इसी कारण सन् 1962 से सन् 1990 तक पंचायती शासन में भ्रष्टाचार एंव भाईभतीजावाद जैसी बुराईयां पनपने लगी। जिससे राष्ट्र

---

[2] Niranjan Koirala, "Nepal in 1990: End of an Era", *Asian Survey*, Vol. XXXI, No. 2 (February, 1991), p. 136.

के आर्थिक विकास एंव राजनीतिक विकास में बाधा पहुंचने लगी। वहीं सन् 1990 का संविधान एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना करता है जिसमें नरेश की शक्तियों को सीमित कर जनता में सम्प्रभुता निहित की जाती है। यद्यपि इस संविधान की रचना करने के लिये किसी संवैधानिक सभा की रचना नही की गई फिर भी इस संविधान को *"People's Constitution"* जनता का संविधान के नाम से जाना जाता है। इस शीर्षक से पता चलता है कि इस संविधान के साथ जनता की भलाई, अधिकार, कर्त्तव्य एवं राजनीतिक शक्ति का सीधा सबंध है।

इस नवीन संविधान ने देश की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों में अपना स्थान बखूबी बनाया है। अतः इससे इस संविधान की गहरी जडों एवं जनता के इसके प्रति विश्वास का पता लगता है। एंव काफी हद तक देश में लोकतंत्र को स्थापित करने में भी इस संविधान का प्रभाव रहा है। राजनीतिक दलों का पुनर्उद्भव करना एवं प्रधानमंत्री की स्थिति को महत्वपूर्ण व शक्तिशाली बनाना इस संविधान की महत्वपूर्ण देन है। शस्त्रा दत्ता पन्त जैसे राजनीतिक विश्लेषकों ने इस संविधान को अच्छी नजर से नहीं देखा है। उन्होंने इस संविधान को (*'Mobocracy'*) भीडतंत्र के परिणाम के रूप में देखा है। उन्होंने यह भी कहा है कि यह संविधान ज्यादातर भारतीय राजनीतिक संरचना के दबाव से बनाया गया है। जिस कारण उन्हें यह लगता है कि यह संविधान जनता की इच्छा के अनुरूप नहीं है।[3] परन्तु यदि सही तरीके से देखा जाये तो यह संविधान जन आन्दोलन की मांगों को पूरा करते हुए बनाया गया था। इस संविधान के प्रावधानों के अनुसार कालान्तर में चुनाव होते रहे, मौलिक अधिकारों का संरक्षण एवं सर्वोच्च न्यायालय की स्वतंत्रता बनी रही एवं कुछ हद तक नरेश की शक्ति को सीमित करने में सफल रहा। इस संविधान के आने के बाद ही जो राजनीतिक जागरूकता जन आन्दोलन से प्रारम्भ हुई थी वही जागरूकता विगत तेरह सालों में बरकरार रही। यद्यपि इस

[3] Shastra Dutta Pant, n. 1, p. 213.

संविधान के चलते अनेक बार पुनः नये संविधान की मांग की गई परन्तु इन मांगों को पहले की तरह न तो अनसुना किया गया और न ही दबाया गया। इस संविधान में उल्लेखित मौलिक अधिकारों में वर्णित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को आधार मानते हुए इन मांगों को नहीं दबाया गया। इस नवीन संविधान के कुछ सकारात्मक पक्ष भी नजर आते है जो कि विगत संविधानों में नहीं थे, वे निम्न प्रकार है-

(1) नेपाल के इतिहास में यह पहला संविधान है जो जन आन्दोलन के राजनीतिक नेताओं, जनता एवं नरेश की आम सहमति पर आधारित है।

(2) यह पहला संविधान है जिसमें विधि के शासन को सही आकार प्रदान करते हुए संविधान को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जिस कारण यह संविधान नरेश से भी उच्च रहा।

(3) पहली बार देश में सम्प्रभुता जनता में निहित की गई जो कि विगत संविधान में नरेश में निहित थी।

(4) इस संविधान में पहली बार मौलिक मानवाधिकारों की बात की गई। एवं यह संविधान सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार देता है कि कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के लिये हुये निर्णयों की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करेगा। इसके अलावा सर्वोच्च न्यायालय को यह भी शक्ति दी गई कि किसी असंवैधानिक निर्णय को कानून बनने से रोके।[4]

राजनीतिक दलों का पुनर्उद्भव

सन् दिसम्बर 1960 में नरेश महेन्द्र द्वारा नेपाल की प्रथम निर्वाचित सरकार को गिराने के पश्चात राष्ट्र में राजनीतिक शक्तियों का संकेन्द्रण राजप्रासाद में हो गया। इस प्रकार शासन व्यवस्था की प्रवृति पूर्णतया राजतंत्रात्मक प्रणाली से चलने लगी। नरेश महेन्द्र के द्वारा लाई गई यह शासन

---

[4] Surya P.S. Dhungel, Bipin Adhikari, B.P. Bhandari and Chris Murgatroyd, *Commentary on the Nepalese Constitution* (Kathmandu, DELF and Lawyer's Inc., 1998), p. 43.

व्यवस्था 'दलविहीन पंचायत लोकतंत्र व्यवस्था' के नाम से स्थापित हुई। इस व्यवस्था में जो सबसे महत्वपूर्ण बात रही वह यह थी कि नरेश महेन्द्र द्वारा सभी राजनीतिक दलों पर पूर्णतया प्रतिबंध लगाना अर्थात दलविहीन व्यवस्था को स्थापित करना तथा यही प्रावधान आगे चलकर पंचायत व्यवस्था के लिये आत्मघाती साबित हुआ। राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध लगाने से सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रमुख रालनीतिक दलों के नेतृत्व में नरेश के इस कदम के विरोध में जूलूस निकाले गये, हडताले की गई एवं इसके प्रति गहरा असन्तोष प्रकट किया। राजनीतिक दलों के इस प्रतिशोध को दबाने के लिये अन्ततः नरेश ने सन् 1980 में एक 'जनमत संग्रह' का आयोजन करवाया।[5] जिसके अन्तर्गत बहुदलीय व्यवस्था एवं पंचायती व्यवस्था में से एक को चुनना था। परन्तु 'जनमत संग्रह' के चुनावों का परिणाम विपरीत निकला जिससे देश के राजनीतिक दलों में पुनः निराशा छा गई और राजनीतिक दलों द्वारा विरोध का दौर पूरे पंचायत काल में चलता रहा। अतः यह कहा जा सकता है कि सन् 1990 के जन आन्दोलन को करने के पीछे यही उददेश्य था।[6] सन् 1990 के संविधान में सबसे पहले राजनीतिक दलों पर से प्रतिबंध हटाने का कृत्य ही किया गया। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिये राजनीतिक दलों का होना काफी महत्वपूर्ण है। क्योंकि राजनीतिक दल ही लोकतंत्र के मुख्य आधार होते हैं। अतएव सन् 1990 का संविधान इन राजनीतिक दलों के ऊपर से प्रतिबंध हटाने के पश्चात् इन्हें संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार निर्धारित भी करता है। इस संविधान में वर्णित है कि प्रत्येक राजनीतिक दल को मान्यता प्राप्त करने के लिये निर्वाचन आयोग में पंजीकरण करवाना होगा। साथ ही उस राजनीतिक दल में 5 प्रतिशत महिला सदस्य का होना जरूरी है। एवं उस राजनीतिक दल को जन प्रतिनिधिसभा में कम से कम 3 प्रतिशत मत प्राप्त करना आवश्यक है क्योंकि

---

5 Rishikesh Shaha, *Politics in Nepal 1980-1990: Referendum, Stalemate and Triumph of People Power* (Manohar, New Delhi, 1990

6 Michael Hutt, "Drafting the 1990 Consitution", in Michael Hutt (ed.), *Nepal in the Nineties* (New Delhi, Oxford University Press, 1994), p. 15.

इसके आधार पर ही उस दल को राजनीतिक दल के रूप में पहचाना जायेगा।[7]

सन् 1990 का संविधान राष्ट्र में बहुदलीय व्यवस्था के मार्ग को प्रशस्त करता है। अतएव इस संविधान में अनुच्छेद 112 के खण्ड दो एवं तीन में राजनीतिक दलों के प्रावधान का वर्णन है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत कहा गया है कि, 'कोई भी कानून व्यवस्था या निर्णय जो कि समान विचारधारा वाले किसी दल के व्यक्ति या एक दल संगठन को देश के चुनाव या राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने की अनुमति देता है और वे यदि संविधान के असंगत हो तो उन्हें दूर किया जाएगा'। (Any law, arrangement or decision, which provides for the participation in the political system or election of the country of a single political organisation or party or of persons having the same political ideology, shall, being inconsistent with this Constitution, be void.)[8] यहां पर राजनीतिक दलों को धर्म, जाति, समुदाय, जनजाति एवं क्षेत्रीयता के आधार पर गठित करने पर प्रतिबंध लगाया गया है। इस अनुच्छेद के खण्ड एक के अनुसार किसी राजनीतिक दल को जनता के द्वारा लोकप्रियता हासिल करके एवं दल के मूल आधारों की विवेचना करने के उपरान्त ही गठित किया जा सकता है। उस राजनीतिक दल को अपनी जीत राजनीतिक नियमों के द्वारा जनता के सहयोग से प्राप्त करनी होगी।[9] इस प्रकार यह लोकतंत्र को सुदृढ़ करने का एक प्रत्यक्ष तरीका होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि विगत संविधान में जहां राजनीतिक दलों को प्रतिबंधित करने में जनता के प्रतिनिधित्व

---

7 SK Chaturvedi, *Nepal: Internal Politics and Its Constitutions*, (New Delhi, Inter – India Publications, 1993), p. 152

8 Article 112, Clause 2, of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

9 Article 112, of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

के आधार को दबाया गया था। वहीं इस संविधान में राजनीतिक दलों के प्रावधान को स्वच्छ, निष्पक्ष एवं सुदृढ़ तरीके से निर्धारित किया गया।

मौलिक अधिकारों को वरीयता

नेपाल के संवैधानिक इतिहास में मौलिक अधिकारो एवं नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख प्रारम्भ से ही होता रहा है। सन् 1948 के संविधान के भाग दो में मौलिक अधिकारों का उल्लेख राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के साथ किया गया जो कि अनुच्छेद 4 एवं अनुच्छेद 5 में पृथक रूप से बंटे हुए है।[10] जिस कारण उन्हें न्यायालय द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता था। सन् 1959 के संविधान में मौलिक अधिकारों को भाग तीन में पृथक से स्थान दिया गया है। साथ ही यहां निजी स्वतंत्रता (अनुच्छेद 3), समानता (अनुच्छेद 4), धर्म (अनुच्छेद 5), सम्पत्ति (अनुच्छेद 6), राजनीतिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 7), जनता की भलाई (अनुच्छेद 8) और संवैधानिक उपचार (अनुच्छेद 9) के बारे में भी कहा गया है।[11] सन् 1962 के संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्यों को एक साथ जोडा गया। इस भाग के अनुच्छेद 9 में मौलिक कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया। इसके पश्चात् इस भाग में अनुच्छेद 10 से अनुच्छेद 17 तक मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया।[12] मौलिक अधिकारों के प्रावधानों में संशोधन भी किये गये। जिसके अन्तर्गत (अनुच्छेद 11) स्वतंत्रता के अधिकार में प्रथम संशोधन, 1967 के द्वारा यह जोडा गया कि मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत नागरिकों को जितनी भी स्वतंत्रता प्राप्त हो परन्तु इस स्वतंत्रता को इस्तेमाल करते हुए कोई भी व्यक्ति दलीय राजनीति से प्रभावित होकर कोई राजनीतिक दल या संगठन या संघ या समुदाय नहीं बना सकते। (No political party or any other organistion, union or association

---

[10] See Part II, Article 4 and Article 5, of Constitution of Nepal Effective April 1, 1948.
[11] Part III of the Constitution of the Kingdom of Nepal , 1959.
[12] Part III of the Textof the Constitution of Nepal, 1962.

motiveted by party politics shall be formed or caused to be formed or run)।[13] यहां स्वतंत्रता के बारे में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति या जनसमूह दलीय राजनीति के लिये कोई भी संगठन, संघ और राजनीतिक दल नहीं बना पायेगें। इस संविधान में भी संवैधानिक उपचारों की बात कही गई। सन् 1990 के संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है जो कि भाग तीन में उल्लेखित है। इस नवीन संविधान में मौलिक अधिकारों की रचना विगत संविधानों की तुलना में विस्तृत रूप से की गई है। यहां पर प्रमुख रूप से जिसे जोड़ा गया है वह है प्रेस एवं प्रकाशन का अधिकार, जो कि विगत संविधान में वर्णित नही किया गया था।[14] यह अनुच्छेद स्पष्ट करता है कि किसी खबर, लेख एवं पठनीय सामग्री के ऊपर रोक नहीं लगाई जा सकती। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि किसी भी प्रेस को किसी भी प्रकार की खबर, लेख एवं पठनीय सामग्री को छापने के आधार पर बंद नहीं किया जा सकता। इस प्रकार इस नवीन संविधान में अभिव्यक्ति एवं वाक् की स्वतंत्रता के ऊपर सबसे ज्यादा छूट प्रदान की गई।

सन् 1963 में अछूतवाद को रोकने के लिये 'मुल्कि आईन' को पास किया गया। वही 1990 के संविधान के अनुच्छेद 11 के खण्ड चार द्वारा इसे पूर्णतया खत्म कर दिया गया।[15] इस संविधान के अनुच्छेद 88 में यह कहा गया है कि नेपाल के नागरिक सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकते हैं यदि उन्हें यह लगे कि किसी कानून या कानून का भाग उनके मौलिक अधिकारों से उन्हें वंचित कर रहा है एवं सर्वोच्च न्यायालय इसका परीक्षण कर इसे अवैध घोषित करता है तब उस घोषणा के दिन से वह कानून अवैध घोषित हो जाएगा। इस संविधान के अनुच्छेद 12 में यह स्पष्ट कहा गया है कि कानून के अनुरूप किसी भी व्यक्ति को निजी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जायेगा।

---

[13] Inserted by the First Amendment (1967) of the Text of the Constitution of Nepal 1962.
[14] Article 13, of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.
[15] Hari Bansh Tripathi, *Fundamental Rights and Judicial Review in Nepal: Evolutions and Experiments* (Kathmandu, Pairavi Prakashan, 2002), p. 140.

साथ ही मृत्युदंड के ऊपर भी पाबंदी लगाई गई। यद्यपि मृत्युदंड को सन् 1931 के दौरान राणा शासन में प्रतिबंधित कर दिया गया था। परन्तु फिर भी कुछ अधिनियमों के अनुरूप यह बना रहा। जैसे सैनिक अधिनियम 1959, राज्य के विरूद्ध अपराध एंव दंड अधिनियम 1989 एंव मुकुट के उत्तराधिकार का अधिनियम आदि उल्लेखनीय है। परन्तु सन् 1985 में बम विस्फोट के कारण जब राजनीतिक अस्थिरता पैदा हुई तब एक विशिष्ट एक्ट द्वारा सन् 1985 में मृत्युदंड को पुनः बहाल किया गया। जिससे देश में आतंकवादियों और दहशत फैलाने वालों को मृत्युदंड दिया जा सके।[16] परन्तु सन् 1990 के संविधान द्वारा लोकतंत्र की स्थापना के बाद मृत्युदंड की यह सजा खत्म कर दी गई। काशीराम दहाल ने अपनी पुस्तक *'Constitutional Law'* में लिखा है कि इस कदम को उठाने के पीछे दो मुख्य कारण थे प्रथम लोकतंत्र को सही रूप से वापस ले आने में एवं द्वितीय उस लोकतंत्र में संविधान में वर्णित मानवाधिकार को सुदृढ़ करने में मृत्युदंड़ को शामिल नही किया जा सकता।[17]

नरेश की सीमित शक्तियां

सन् 1990 के पूर्व लिखित संविधानों मे नेपाल नरेश की राजनीतिक भूमिका को कभी भी एक दायरे में बांध कर कम नहीं किया गया। हमेशा नरेश राष्ट्र प्रमुख एवं देश के प्रत्येक राजनैतिक मामले में अन्तिम निर्णायक की स्थिति में सक्रिय रहा। सन् 1990 के संविधान में प्रथम बार नेपाल को सही रूप से एक संवैधानिक राजतंत्रात्मक व्यवस्था के रूप में ढ़ाला गया। यद्यपि संसद के ऊपरी सदन (राज परिषद) में नरेश को दस सदस्य मनोनीत करने की शक्ति दी गई। परन्तु प्रधानमंत्री की सलाह के उपरान्त ही नरेश उन सदस्यों को मनोनीत कर पायेंगे। यह प्रावधान यहां संसदीय लोकतंत्र का आभास देता है। यह नवीन संविधान कार्यपालिका शक्ति नरेश एवं मंत्रिपरिषद

---

[16] Ibid, p. 167.
[17] Kashi Ram Dahal, *Constitutional Law* (Kathmandu, Pairavi Prakashan, 1992), p. 199.

में निहित करता है। परन्तु नरेश द्वारा किसी भी निर्णय को लेने से पहले उस पर प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद की सलाह व सहमति आवश्यक है।[18] जो निर्णय नरेश के निजी जीवन से संबधित है उन पर ही नरेश स्वयं की इच्छा से निर्णय ले सकते हैं, इसके सबंध में अन्य सरकारी विभागों का हस्तक्षेप नहीं होगा। यद्यपि कुछ निर्णयों के लिये नरेश को कुछ संगठनों एवं समुदायो पर निर्भर रहना पड़ेगा। प्रधानमंत्री को चुनने के मामले में काफी हद तक नरेश की भूमिका भारत के राष्ट्रपति की भूमिका से मेल रखती है। नरेश चुनाव में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही प्रधानमंत्री के रूप में चुनते है और यदि किसी भी दल को पूर्ण बहुमत न मिले एवं अल्पमत सरकार बनाने का मामला सामने आता है तब सरकार बनाने वाले दल के नेता को तीस दिन के अंदर संसद में (*Vote of Confidence*) विश्वास मत लाना होगा। यदि विश्वास मत न लाया जा सका तो नरेश को छः माह के अन्दर नये चुनावों की घोषणा करनी होगी। परन्तु व्यवहारिक तौर पर यह देखा जाता है कि राजनीतिक दलों के नेताओं ने संसद को एक ऐसी जगह बना रखी है जहां सांसदों को खरीदा एवं बेचा जाता है। इसी कारण सन् 1994 से सन् 1999 के दौरान पांच सरकारें आई और गई। इन राजनीतिक दलों के आपसी द्वन्द के चलते नरेश ने भी अपने क्षमता में वृद्धि की है। यद्यपि विगत संविधान में जहां प्रधानमंत्री का पद एवं स्थिति जनता द्वारा निर्धारित नहीं होती थी, वहीं इस संविधान में प्रधानमंत्री के पद को पूर्णतया लोकतांत्रिक बनाने की कोशिश अवश्य की गई। आपातकालीन प्रावधान को लेकर भी नरेश की शक्तियां कम की गई। यद्यपि यहां नरेश नेपाल की शाही सेना के सुप्रीम कमांडर इन चीफ है। परन्तु आपातकाल की घोषणा के तीन माह के अन्दर जनप्रतिनिधि सभा की सहमति आवश्यक है तथा साथ ही नेपाल की शाही सेना को देश के बाहर या अंदर तैनात करने का निर्णय राष्ट्रीय रक्षा परिषद द्वारा लिया जाएगा।[19] इस परिषद

---

[18] Article 35, of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.
[19] Article 118, of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

के अध्यक्ष प्रधानमंत्री होगें एवं अन्य सदस्य रक्षा मंत्री और कमांडर इन चीफ होगें। परन्तु व्यवहारिक तौर पर यदि प्रधानमंत्री रक्षा मंत्री के पद पर हो तो नरेश अपनी मनमानी कर सकते है। क्योंकि नेपाल की शाही सेना उनके अधीन है।

इनके अलावा कुछ अन्य सकारात्मक पक्ष भी 1990 के संविधान के देखे जा सकते है। जैसे द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना। इस नवीन संविधान के लागू होने के पश्चात् क्रमशः तीन राष्ट्रीय चुनावों का होना, नेपाल में एक बहुलवादी व्यवस्था की सरकार की स्थापना करता है।[20] विगत संविधान में जहां एकसदनीय व्यवस्थापिका का प्रावधान था जो कि राष्ट्रीय पंचायत के नाम से जानी जाती थी। इस राष्ट्रीय पंचायत पर नरेश का प्रभुत्व होने से जनप्रतिनिधित्व अवधारणा का अभाव रहा जो कि लोकतंत्र के सिद्धान्तों के विपरीत है। वहीं सन् 1990 के संविधान में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना से लोकतंत्र का दायरा बढ़ा एंव नरेश का नियन्त्रण घटा। नेपाल के इस नव स्थापित संसदीय व्यवस्था में एक शक्तिशाली कार्यपालिका की रचना की गई। जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाएगी। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से वे 'primus inter pares' के रूप में विशेष स्थिति का वहन करेगें।[21] अतः इस प्रकार प्रधानमंत्री की स्थिति जहां विगत संविधान में एक कठपुतली के समान थी, वहीं इस नवीन संविधान में प्रधानमंत्री की शक्ति व भूमिका में वृद्धि हुई और वह स्वतंत्र तरीके से कार्य करने लगा। इस नवीन संविधान में एक स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना की गई। संविधान में न्यायधीशों के चयन एंव अपदस्थ के बारे में प्रावधानों का वर्णन किया गया। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश एंव मुख्य न्यायधीश को उनके पद से केवल महाभियोग प्रक्रिया द्वार हटाया जा सकता है। तथा इसके लिये संसद के दोनो सदनों के दो तिहाई

---

[20] Surya Kiran Gurung, "Parliamentary Practise and Procedure in Nepal", *Nepali Journal of Contemporary Studies*, Vol. II, No. 2, (Kathmandu, September 2002), p. 18.

[21] Ganga Bahadur Thapa, "Political Transition in Nepal: Whither Democratisation?", *Pakistan Horizon* (Islamabad), vol. 52, no. 2, April 1999, p. 26.

बहुमत का होना आवश्यक है।[22] सन् 1990 का यह संविधान अपने विशिष्ट 'संवैधानिक अंगों' की भी व्याख्या करता है। इन अंगों में प्रमुख है- चुनाव आयोग, लोक सेवा आयोग, महान्यायवादी महालेखा परीक्षक एवं सत्ता दुरूपयोग अन्वेषण आयोग (Commission on Investigation of Abuse of Authority)। इन अंगो का स्थान यद्यपि विगत संविधान में भी था। परन्तु तथ्यात्मक अन्तर यह है कि ये अंग वर्तमान बहुदलीय लोकतांत्रिक संवैधानिक व्यवस्था के अखण्ड भाग है।[23] ये अंग देश में निरीक्षण व साम्यता के जरिये लोकतंत्र के स्तर एवं मापदण्ड को बनाये रखते हैं। इन संवैधानिक अंगों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है और लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना इन प्रभावी संरचनाओं वाली संस्थाओं के बगैर नहीं की जा सकती। यद्यपि विगत संविधान में भी इन अंगों का अन्ततः सन् 1990 के संविधान की स्थापना से जो संस्थात्मक परिवर्तन सामने आये वे लोकतंत्र के लिये सकारात्मक पक्ष लिये हुए थे।

संविधान की कमजोरियां

सन् 1990 का संविधान नेपाल में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना करता है तथा बहुदलीय व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार यह संविधान यद्यपि सभी अच्छे पक्षों को लेकर बनाया गया था। परन्तु इस संविधान के लागू होने के पश्चात् क्रमशः इसकी कमजोरियां राजनैतिक अस्थिरता व संकट के रूप में सामने आने लगी। इनमें प्रमुख सकंट इस प्रकार है, माओवादी समस्या तथा 4 अक्टुबर, सन् 2002 की असंवैधानिक घटना। इन समस्याओं ने इस नवीन संविधान के प्रावधानों की कमियों को उजागर कर दिया।

---

[22] Ibid.

[23] Mukti Rijal, Nepalese constitutional organs: Making the Ombudesmen active, Rising Nepal (Kathmandu), 17 September 1996.

इस संविधान की स्थापना के दौरान ही इसकी वैधता पर एवं इसके लोकतांत्रिक होने पर प्रश्न उठने लगे। किसी भी संविधान के निर्माण के लिये एक संवैधानिक सभा की आवश्यकता होती है। लोकतांत्रिक व्यवहार के अनुसार वह संवैधानिक सभा जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों से मिलकर बननी चाहिए। परन्तु नेपाल में इस सन् 1990 के संविधान के निर्माण में ऐसा नहीं हुआ। इस संविधान का निर्माण एक ऐसी संवैधानिक समिति ने किया जो कि नरेश द्वारा चुने हुए आयोग के सदस्यों से मिलकर बनी थी। जिसे 'संवैधानिक सुझाव आयोग' कहा गया। इस कारण संवैधानिक शक्ति जनता की सम्प्रभुता पर नहीं वरन् नरेश की सम्प्रभुता पर टिकी रही। अतः यह कहा जा सकता है कि विगत दशकों सें जिस प्रकार नरेश के आदेश व निर्णय चले आ रहे थे। यह संविधान भी उन्हीं निर्णयों जैसा प्रतीत होता है। प्रस्तावना में यह स्पष्ट कहा गया है कि *'By the virtue of the state Authority as exercised by us'*[24] अर्थात राष्ट्र शक्ति संविधान बनाने की शक्ति जनता में निहित करता है। इस बात पर भी प्रश्न अंकित होता है। इसके ऊपर राष्ट्र शक्ति कौनसी है जो सम्प्रभुता जनता को प्रदान करती है, यह भी प्रश्न बना रहा है। मुख्यतया, संवैधानिक सभा का मुद्दा सबसे ज्यादा उस समय वामपंथी दलों ने उठाया। उस दौरान अन्तिरम सरकार के प्रधानमंत्री कृष्णप्रसाद भट्टाराई नेपाली कांग्रेस का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उन्होने इस 'संविधान सुझाव आयोग' के प्रस्ताव को मान्यता प्रदान की थी। बाबूराम भट्टाराई के अनुसार, "राजनैतिक दलों के किसी नतीजे पर न पहुंचने के कारण संवैधानिक सभा का मुद्दा कोई सही रूप नहीं ले सका।"[25]

संविधान में वर्णित प्रावधानों को यदि सही तरीके से लागू किया जाये तो संविधान के समक्ष समस्याओं व कठिनाइयों को आने से रोका जा सकता है।

---

[24] Preamble to the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.

[25] Baburam Bhattarai, "Triangular Balance of Forces", *Economic and Political Weekly*, (Mumbai, November 16, 2002), p. 4607.

संविधान के अनुच्छेद 35 में नरेश की कार्यपालिका शक्ति को सम्पूर्णतया मंत्रिपरिषद की सलाह व सहमति पर निर्भर किया गया है। परन्तु इस संविधान में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि यदि नरेश कोई निर्णय मंत्रिपरिषद की सलाह बगैर लेता है तो इसके लिये क्या संवैधानिक व्यवस्था रहेगी ? 4 अक्टुबर, सन् 2002 की घटना संविधान की इसी कमजोरी को परिलक्षित करती है। वही अनुच्छेद 127 नरेश को यह शक्ति देता है कि वह मंत्रिपरिषद एवं प्रधानमंत्री की सलाह पर संसद को भंग कर सकता है।[26] परन्तु संविधान में यह उल्लेख नही किया गया कि यदि नरेश प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद की सलाह बगैर संसद को भंग करता है तो संविधान में इसके लिये क्या व्यवस्था होगी। अनुच्छेद 27 के भाग तीन में यह कहा गया है कि नरेश का यह कर्त्तव्य है कि वे देश की जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए नेपाल के संविधान को संरक्षित करेंगे।[27] परन्तु कुछ कदम नरेश ने इस आधार पर ऐसे भी उठाये जो इस अनुच्छेद को अनदेखा करते है। संविधान के अनुच्छेद 43 के भाग दो व तीन में यह वर्णित किया गया है कि प्रधानमंत्री नरेश को प्रत्येक नये कानून, नये प्रस्तावित बिल और राजनीतिक निर्णयों के बारे में जानकारी उपलब्ध करायेंगे। यदि नरेश इन सभी पर सहमत न हो तो वे प्रधानमंत्री को इन मामलों पर सलाह एंव मशवरे के लिये बुला सकते हैं।[28] लेकिन जिस प्रकार अनुच्छेद 127 का प्रयोग करके 4 अक्टुबर, सन् 2002 में नरेश ज्ञानेन्द्र ने जनता के चुने हुए नेता शेर बहादुर देउबा को बर्खास्त किया और लोकेन्द्र बहादुर चांद को प्रधानमंत्री नियुक्त किया, यह एक अलोकतांत्रिक, असंवैधानिक एवं अकार्यान्वित कृत्य माना गया।[29] संविधान सुझाव आयोग के सदस्यों ने इस मामले पर कहा कि नरेश का यह कदम असंवैधानिक है एवं नरेश किसी भी

---

[26] Article 127 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.
[27] Article 27, Clause 3 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.
[28] Article 43 of the Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990) November 9, 1990.
[29] "Statute – Framers for all-Party Government", *The Himalayan Times*, Thursday, July 31, 2003.

तरीके से शक्ति परिवर्तन स्वंय की इच्छा से नही कर सकते। जब राष्ट्र में जनता के प्रतिनिधियों की संस्था का अभाव हो तो उस स्थिति में नरेश जनता से कर प्राप्त नही कर सकते। इस बात को विश्वनाथ उपाध्याय, दमननाथ डुंगाना, भारत मोहन अधिकारी, माधव कुमार नेपाल, मुकुंद रेगमी एंव लक्ष्मण अरियाल ने हस्ताक्षरित किया।[30]

नेपाल एक ऐसा राष्ट्र है जिसमें बहुसंजातीय समूह एवं अनेक समुदाय के लोग निवास करते है। इस संविधान में राष्ट्र की विभाज्य राजनीति के बारे में बताया गया है तथा इसके कारण देश में एकता की जरूरत है। परन्तु यश घई के अनुसार देश की अखण्डता एवं सामाजिक न्याय को संविधान में एक प्रमुख ध्येय के रूप में देखा गया। लेकिन इन्हें प्राप्त करने के लिये संविधान के प्रावधान अपर्याप्त रहे। जिस कारण जो समुदाय इतने दिनों तक समाज की मुख्य धारा से अलग थे उन्हें वापस समाज से जोड़ने में कठिनाईयां सामने आने लगी।[31] अन्ततः कह सकते हैं कि विभिन्न पहुलओं पर यह संविधान अपनी विवशता एवं कमजोरियां प्रकट करता है।

नेपाल की राजनीति काठमांडू घाटी से चलाई जाती है। जहां पार्बतीय संस्कृति द्वारा देश की राजनीति को संचालित किया जाता है। नेपाल के बाहरी अंचलों में जहां प्रमुख रूप से देश की जनजातियों के लोग है (जो कि प्रमुखतया मंगोल उत्पत्ति के है) एवं नेपाल के तराई क्षेत्र में रहने वाले लोग (जो भारतीय मूल के है) रहते है। ये लोग स्वयं को पार्बतीय संस्कृति से पृथक माने है। नेपाल में 'हिन्दू' धर्म को प्रमुखतया एक जीवनधारा के रूप में देखा जाता है एवं पार्बतीय संस्कृति इससे पूण रूप से जुडी हुई है। जनजातियां एवं तराई क्षेत्र के लोग इस हिन्दूत्व से इतने जुडे हुए नहीं है। नेपाल राष्ट्र को संविधान में हिन्दू राष्ट्र घोषित करने के कारण इस पार्बतीय संस्कृति को फैलाने की कोशिश की गई। जिसके कारण देश में रहने वाले अन्य धर्मो के लोगों, जनजाति समुदाय एवं तराई अचंल के लागों की पहचान को एक खतरा बना

---

[30] Ibid.

[31] Yash Ghai, "Crisis Beyond Legality", *Himal* (Lalitpur, November 2003), p. 64.

हुआ है।[32] इस प्रकार इस एक सम्प्रदाय को संविधान में अन्य सम्प्रदायों से अधिक वरीयता दिये जाने के कारण यह संविधान साम्प्रदायिक संविधान बनकर सामने आता है।

निष्कर्षतः

सन् 1990 का संविधान जन आन्दोलन की परिणति के फलस्वरूप अस्तित्व में आया जिसमें जनता की इच्छाओं को मद्देनजर रखते हुए इस संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में जनता के मौलिक अधिकारों को विशेष महत्व दिया गया। इस संविधान की प्रस्तावना में संवैधानिक राजतंत्र की बात कही गई जो कि नरेश को संविधान के अधीन करती है एवं उन्हें मात्र राष्ट्र के प्रतीक के रूप में स्थापित करती है। वहीं यह संविधान नरेश की राजनीतिक सक्रियता को कम करके जनता के प्रतिनिधियों को स्वतंत्र तरीके से शासन चलाने की शक्ति प्रदान करता है। जबकि विगत संविधानों में ऐसा नहीं था वहां नरेश का शासन पर पूर्ण नियन्त्रण रहता था तथा प्रधानमंत्री नरेश का इच्छानुसार अपने पद पर बने रहते थे। अतः इन सकारात्मक परिवर्तनों के कारण यह संविधान लोकतंत्र का सही रूप में निरूपण करता है। परन्तु विगत तेरह सालों में इस संविधान के प्रावधानों की कमजोरियां संवैधानिक संकट के रूप में उभरकर सामने आयी। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि संविधान का सही रूप से इस्तेमाल न करने के कारण देश में ये संवैधानिक और राजनीतिक संकट उत्पन्न हुए है। जहां राजनीतिक दलों को सक्रिय होना चाहिए वहां नरेश के अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण संविधान की मर्यादा को क्षति पहुंचती है तथा संविधान ऐसे समय में असक्षम हो जाता है। अतः नरेश एवं राजनीतिक दलों को आपसी तारतम्य स्थापित करके संविधान को प्रमुखता देनी चाहिए जिससे संवैधानिक संकटों को मिटाया जा सकता है।

---

[32] John Whelpton, "Political Identity in Nepal: State, Nation, and Community", in David N. Gellner, Joanna Pfaff Czarnecka and John Whelpton, eds. *Nationalism and Ethnicity in a Hindu Kingdom: The Politics of Culture in Contemporary Nepal*, (Amsterdam, Harwood Academic Publishers, 1997), p. 57.

अध्याय 5

माओवादी आन्दोलन और संवैधानिक संकट

नेपाल में बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना होने के पश्चात् सम्पूर्ण सरकारी संरचना के समक्ष सन् 1996 में माओवादी आन्दोलन एक चुनौती के रूप में सामने आया। इस आन्दोलन से न केवल संवैधानिक राजतंत्रात्मक व्यवस्था के लिये खतरा पैदा हुआ है बल्कि नेपाल की जनता के लिये भी वर्तमान में एक प्रमुख समस्या है।

काठमांडू में स्थित 'मानवाधिकार संगठन' के महासचिव शुभाकर बुद्धठोकी के अनुसार, "इस माओवादी आन्दोलन के कारण सन् 1996 से सन् 2003 सितम्बर तक राष्ट्र में 7000 से अधिक लोगों की मौतें हो चुकी हैं"।[1] इस आन्दोलन का फैलाव राष्ट्र में क्रमिक रूप से होने लगा एवं सन् 2001 में यह अपनी चरम सीमा पर रहा। जिसके फलस्वरूप नेपाल सरकार ने देश में आपातकाल लगाने की घोषणा की। यह आपातकाल का दौर राष्ट्र में दिसम्बर, 2001 से मई, 2002 तक लागू रहा।[2] इन माओवादियों की प्रमुख मांगें इस प्रकार रही कि पहले एक अंतरिम सरकार का गठन किया जाये जिसके पर्यवेक्षण में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा नये संविधान की रचना की जाएगी। इसके अतिरिक्त देश में गणतंत्रात्मक शासन की स्थापना की जाए।[3]

यद्यपि इस समय के दौरान विभिन्न सरकारें सत्ता में आई तथा इन सरकारों ने नरेश की सहायता से माओवादियों के साथ बातचीत करने की कोशिश की। जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र में तीन बार 'शांति प्रक्रिया' की

---

1 Shobhakar Budhathoki, "Conflict, Human Rights and Derailed Peace Process in Nepal", *Journal of Peace Studies*, vol. 10, issue 3, July – September 2003, p .77.

2 Birendra P. Mishra., "Nepal: A Fragile Democracy", *South Asia Politics*, (New Delhi), May 2003, p. 18.

3 Smruti S. Pattanaik, "Maoist Insurgency in Nepal: Examining Socio-Economic Grievances and Political Implications", *Strategic Analysis*, (New Delhi, Institute for Defence Studies and Analyses), vol. 26, no. 1, January – March 2002, p. 119.

कोशिश की गई। परन्तु दोनों पक्षों- शासन पक्ष एवं आन्दोलनकारी पक्ष- के मध्य आपसी सहयोग, विश्वास एवं समझौते के अभाव के कारण ये शांति प्रक्रियाएं अन्ततः असफल रहीं। इस प्रकार माओवादी आन्दोलन राष्ट्र में निर्बाध तरीके से चल रहा है। इस आन्दोलन के कारण संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों एवं मानवाधिकारों का हनन निरन्तर होता रहा है। अतः माओवादी आन्दोलन वर्तमान संविधान के प्रावधानों को लागू करने में एक बाधा बनकर सामने आया है।

माओवादी आन्दोलन का संविधान पर प्रभाव

माओवादी विद्रोह की उत्पत्ति नेपाल के साम्यवादी आन्दोलनों के संदर्भ में भली–भांति देखी जा सकती है। 1962 में पंचायत शासन व्यवस्था के दौरान साम्यवादी दल ने नेपाली कांग्रेस के साथ मिलकर बर्खास्त संसदीय व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के लिए नरेश के ऊपर दबाव डाला। साम्यवादी दल में हमेशा से विभक्त होने की प्रवृत्ति रही है। सन् 1980 के दशक में नेपाल साम्यवादी दल (मार्क्सिस्ट–लेनिनिस्ट) CPN (ML) के नाम से एक पृथक दल बना। इस दल में आगे चलकर कर पुष्पकमल दहाल (प्रचण्डा) व बाबूराम भट्टाराई जैसे नौजवान नेता शामिल हुए, जिन्होंने इस दल को आगामी वर्षों में एक पृथक राह दिखाई।[4]

1990 के जन आंदोलन के दौरान इस दल ने नेपाली कांग्रेस एवं नेपाली साम्यवादी दल (UML) के साथ मिलकर पंचायत शासन का विरोध किया। परन्तु इस उग्र साम्यवादी दल की मांगें राष्ट्र के अन्य प्रमुख दलों से पृथक रही। इस दल का उद्देश्य यह रहा कि राष्ट्र से राजतंत्र को पूर्णतः समाप्त कर दिया जाये तथा सरकार का गणतन्त्रात्मक रूप स्थापित हो। इस दल के अनुसार राष्ट्र में जनता द्वारा निर्वाचित शासक द्वारा ही शासन किया जाना

---

[4] S.D. Muni, *Maoist Insurgency in Nepal: The Challenge and the Response*, (New Delhi: Rupa Publishers and Observer Research Foundation, 2003), p. 3.

चाहिए। पैतृकता (राजतंत्र द्वारा) के आधार पर देश में शासन नहीं होना चाहिए। बल्कि वहीं अन्य प्रमुख दल देश में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना से सहमत थे।[5]

यह उग्र साम्यवादी दल CPN (ML) में भी विभक्तिकरण की प्रवृति रही। 1990 में इस दल के दो भाग हुए। जिसमें एक दल भूमिगत रूप से सरकार का विरोध करता रहा तथा दूसरा दल राजनैतिक रूप से सरकार पर दबाव बनाने लगा। परन्तु वर्ष 1996 में इन दलों ने पुनः एक जुट होकर माओवादी आन्दोलन को उग्र रूप से राष्ट्र में संचालित किया।

इन उग्र साम्यवादियों की राष्ट्र में गणतन्त्रात्मक शासन लाने की प्रवल मांग रही। अतः माओवादी 1990 के संविधान के निर्माण से ही नाखुश थे। क्योंकि संविधान निर्माण के लिए संवैधानिक सभा जनता द्वारा न चुनकर नरेश द्वारा चुनी गई। अतः लोकतंत्र को प्रारंभ करने का आधार ही राजतंत्र बन पड़ा है। वहीं राष्ट्र में गणतंत्र लाने के लिए जनता की भागीदारी बेहद जरूरी है। इस प्रकार माओवादियों ने देश में गणतंत्र लाने के लिए क्रांति का तरीका अपनाया। उनके अनुसार संवैधानिक पथों पर चलते हुए गणतंत्र की स्थापना करना असंभव है क्योंकि नरेश स्वयं की सत्ता नेपाल जैसे सामन्ती राष्ट्र से हटाना मुश्किल है। माओवादियों के अनुसार राजतंत्र को तभी हटाया जा सकता है जब नेपाल की जनता राजतंत्र के राजनैतिक चरित्र पर ऐसा दबाव डाले जिससे राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र खुद ब खुद स्थापित हो सके।[6]

नवम्बर, 2001 में प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा द्वारा राष्ट्र में आपात काल की घोषणा के पश्चात् नरेश ज्ञानेन्द्र ने सेना को यह आदेश दिया कि माओवादियों को किसी भी प्रकार से कुचल दिया जाय। उपरोक्त तथ्य यह दर्शाता है कि नरेश को भी माओवादियों की शक्ति के ऊपर आंशका होने लगी

---

5 Nalini Kant Jha, "Civil Strife in Nepal: Challenges and Road Ahead", *South Asia Politics*, June 2003, p. 27.

6 Judith Pettigrew and Sara Shneiderman, "Ideology and Agency in Nepal's Maoist Movement", Himal, Vol.17, no.1, Janaury 2004. p.26.

कि, ये बहुत कुछ कर सकते हैं। इस कारण उन्हें किसी भी तरह से रोकना ज्ञानेन्द्र का मुख्य उद्देश्य था। वहीं नरेश ज्ञानेन्द्र के 4 अक्टूबर 2002 के असंवैधानिक कदम ने माओवादियों के साहस में वृद्धि की।[7] यह घटना का माओवादी आन्दोलन से प्रत्यक्षतः जुडी हुई है। क्योंकि इस आन्दोलन के चलते देउबा सरकार देश में चुनाव करवाने में असफल रही। इसके अलावा इस सरकार की माओवादियों के साथ वार्ताएं भी कोई परिणाम नहीं निकाल सकी। अतः नरेश ज्ञानेन्द्र द्वारा इस सरकार को बर्खास्त कर दिया गया।

सन् 1996 में बाबूराम भट्टाराई एवं प्रचंडा ने पुनः एकजुट होकर इस दल (माओवादी) को मजबूत किया तथा परस्पर विचार - विमर्श करने के पश्चात उन्होंने सरकार के समक्ष अपनी मांगों को प्रस्तुत करने का निर्णय लिया। जिसके फलस्वरूप 4, फरवरी सन् 1996 में देश के प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा की सरकार के समक्ष माओवादियों द्वारा 40 मांगें प्रस्तुत की गई। इन मांगों के अन्तर्गत प्रमुखतया देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को सुधारने की बात कही गई। माओवादियों की कुछ मांगें ऐसी भी थी जिनसे राष्ट्र में समाजवाद एवं माओवाद की छवि अंकित होती नजर आती है।[8] इन मांगों में प्रमुख हैं– भूमि के असमान वितरण एवं सांस्कृतिक प्रदूषण पर रोक। शिक्षा के निजीकरण पर रोक लगाना एवं निःशुल्क शिक्षा मुहैया कराई जाये। सभी को काम पाने का अधिकार प्रदान करना।

इनके अतिरिक्त माओवादियों की 40 मांगों में ऐसी भी मांग थी जो कि देश के संवैधानिक चरित्र में परिवर्तन लाने की बात करती हैं। जो कि इस प्रकार है– जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा बनी संवैधानिक सभा द्वारा एक नवीन संविधान की रचना होनी चाहिए। नरेश एवं नरेश के परिवार को जो संविधान द्वारा विशेषाधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्रदान की गई हैं उन्हें समाप्त

---

7 John Mackinly and Bishnu Upreti, *The King and Mao*, The World Today, Vol. 59, No. -2, p.26.

8 For the entire Forty Point Demand of the Maoists, see S.D. Muni, n. 1, Annexure II, p. 82 – 87.

किया जाना चाहिए। देश की सेना, पुलिस एवं प्रशासन जनता के नियन्त्रण में रहे। नेपाल को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित करना होगा। देश में अस्पृश्यता का अन्त होना चाहिए एवं दलितों को समाज में समान दर्जा मिले। देश में बोली जाने वाली सभी भाषाओं को समान दर्जा मिलना चाहिए। स्वतंत्र विचार एवं स्वतंत्र प्रेस की गारण्टी मिले तथा देश के प्रसार साधनों को स्वायत्तशाषी बनाया जाये। पूंजीपति जमींदारो की जमीन जब्त की जाये एवं उसे खेतिहर मजदूरों व गरीब किसानों में बांटा जाये तथा जितनी भूमि पर कोई काम कर सकता है उसे मात्र उतनी ही भूमि दी जाये उससे ज्यादा नहीं। प्रत्येक नागरिक को काम देना होगा तथा जब तक उसे काम नहीं मिलेगा तब तक उन्हें वेतन भत्ता (Stipend) देना होगा। वर्ष 1950 की भारत के साथ शांति एवं मित्रता संधि जो कि असमान करार और समझौते (Unequal Stipulation and Agrrement) पर आधारित है उसे खत्म करना होगा। इसके अलावा टनकपुर व महाकाली समझौतों को भी रद्द (Nullified) करना होगा।[9]

विश्लेषणात्मक तौर पर कहा जा सकता है कि उपरोक्त मांगें राष्ट्र में गणतंत्र आने का आधार प्रदान करती हैं। परन्तु इन मांगों को सरकार एवं नेपाल नरेश द्वारा मंजूर करना काफी मुश्किल है। क्योंकि इन मांगों को मानने से वर्तमान संविधान का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। यद्यपि माओवादी अपनी मांगों में समय-समय पर परिवर्तन लाते रहे हैं। वर्ष 2001 में राजप्रासाद हत्याकांड के पश्चात् माओवादियों ने अपनी एक प्रमुख मांग– राजतंत्र की पूर्ण समाप्ति की मांग को वापस ले लिया। क्योंकि माओवादी नेताओं ने इस घटना के दौरान देखा कि राष्ट्र में जनता की सहानुभूति राजप्रासाद की तरफ बढ रही है।[10] इन माओवादियों के आन्दोलन का मुख्य आधार जनता का समर्थन है इसलिये जनता के रूख को जानना माओवादियों के लिये बेहद जरूरी है। अतः उन्होंने

---

[9] Ibid.
[10] Nalini Kant Jha, n.5, p.30.

परिस्थितियों के अनुसार अपनी मांगों में परिवर्तन किया। परन्तु अपनी अन्य प्रमुख मांगों पर माओवादी डटे रहे।

नेपाल में साम्यवादी दलों के तीन विचारधारात्मक दल बने हुए है, प्रथम नेपाली साम्यवादी दल (UML), नेपाल मजदूर एवं किसान दल तथा माओवादी दल।[11]

इस विचारधारात्मक रूप से माओवादियों ने एक नवीन लोकतंत्र (New Democracy) को ग्रहण किया। इस 'नवीन लोकतंत्र' के आधार पर जो मांगे की गई वे ज्यादातर तीन क्षेत्रों से जुड़ी हुई थी– राष्ट्रवाद, जनता की भलाई एवं जनता के जीवन स्तर में सुधार। राष्ट्रवाद के आधार पर माओवादियों ने भारत एवं नेपाल के सम्बन्धों को बतलाया हे। इसके अन्तर्गत 1950 की शांति एवं मित्रता संधि तथा महाकाली संधि को खत्म करने की बात कही है। इसके अतिरिक्त गोरखा सेना का विदेशी सेनाओं के साथ जुड़ा रहना बंद करना होगा। जनता की भलाई से यहां तात्पर्य यह है कि एक नई संवैधानिक सभा का गठन करके नये संविधान का निर्माण करना होगा, जहाँ राजतंत्र को समाप्त करना होगा। नरेश, नरेश के परिवार एवं नेपाली शाही सेना को जनता के नियन्त्रण में लाना होगा, नेपाल को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित करना न कि हिन्दू राष्ट्र। जनता के जीवन स्तर में सुधार के अन्तर्गत कहा गया कि भूमि गरीब किसानों को दी जाएगी। काम का अधिकार, उद्योग, कृषि एवं सेवा विभाग के कार्मिकों के लिए न्यूनतम वेतन का प्रावधान रहेगा। निःशुल्क शिक्षा, भ्रष्टाचार को नियन्त्रित करना एवं एक अच्छी सरकार के लिए जिन सुधारों की आवश्यकता है वे सभी लाए जाएं।[12]

माओवादी नेता पुष्प कमल दहाल (प्रचंडा) के अनुसार एक दिन में ये सभी सुधार नहीं लाए जा सकते। ये सभी क्रमिक रूप से आएंगे। पहला, देश से सामन्तवादी शासन व्यवस्था को खत्म करना होगा। दूसरा, नया संविधान

---

[11] ManjushreeThapa, Hari Roka, *Nepal: Politics of Fragmentation,* Economic and Political Weekly, August 21-28, 1999.

[12] S.D. Muni, n,2 p.18-19.

लाना होगा एवं राजतंत्र को पूर्णतः समाप्त करना होगा। इन सुधारों को पूंजीवादी लोकतंत्र के अधीन लाने की कोशिश की जाएगी न कि राजतंत्र के अधीन।[13]

नेपाल में राजनीतिक अस्थिरता के दौर में राजनीतिक नेताओं द्वारा आरोप एवं प्रत्यारोप का खेल देखा गया है। अतः माओवादी आन्दोलन के मुद्दे पर नेता वर्ग राष्ट्रीय चेतना लाने में असफल रहे। सन् 2001 तक देश के नेता वर्ग राज प्रासाद पर आरोप लगाते रहे कि देश में माओवादियों की हिंसक गतिविधियों के बढ़ने के बावजूद भी सेना के प्रयोग की अनुमति नहीं दी जा रही है। परन्तु नरेश शायद इसलिए डर रहे थे कि बिना स्पष्ट सुनियोजित रणनीति और बिना लोकप्रिय नेतृत्व के सेना को माओवादियों के खिलाफ उतारना गलत होगा।[14]

देश में चल रहे इस हिंसक दौर को नियन्त्रण में करने के लिये नेपाल नरेश ज्ञानेन्द्र ने 26, नवम्बर सन् 2001 को नरेश की सलाह से संविधान के अनुच्छेद 115(1) के आधार पर राष्ट्र में आपातकाल की घोषणा की। शाही आदेश में यह कहा गया कि, 'ये आदेश राष्ट्र के लिये लिया गया है क्योंकि इस समय राष्ट्र की सम्प्रभुता, सुरक्षा एवं एकता खतरे में है'। इस आपातकाल की घोषणा से जनता के बहुत से मौलिक अधिकारों पर रोक लगाई गई। इनमें प्रमुख है– वाक् स्वतंत्रता, सभा एकत्रित करने का अधिकार, देश में भ्रमण करने, प्रेस एवं प्रकाशन का अधिकार, नजरबंदी निवारक के विरूद्ध अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, गोपनीयता का अधिकार एवं संवैधानिक उपचारों का अधिकार।[15] उपरोक्त मौलिक अधिकारों को संविधान के प्रावधानों के अनुसार निलम्बित किया गया। नरेश ज्ञानेन्द्र के इस शाही आदेश के बाद नेपाल की

---

[13] Ibid. 26

[14] Shri Nischal Nath Pandey, "Nepal's Maoist Movement and Implications for India", USI Journal, Jan-Dec. 2002, p.561.

[15] Keshav Pradhan, "State of Emergency declared in Nepal", *The Hindustan Times*, November 20, 2002.

शाही सेना ने माओवादी गुरिल्लों को कुचलना प्रारम्भ कर दिया।[16] इस प्रकार संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का हनन् निरन्तर होता रहा। देश में आपातकाल के इस दौर में प्रेस एवं प्रकाशन पर भी कई प्रकार के प्रतिबंध लगाये गये। जैसे, सरकार ने आदेश जारी किया कि माओवादी नेताओं के उग्र विरोधी भाषणों व साक्षात्कारों तथा नेपाल नरेश के विरूद्ध कुछ भी प्रेस प्रकाशित न करें। बल्कि सरकार के निर्देशों एवं नेपाली शाही सेना के बहादुरी के कारनामों को ही प्रकाशित करें।[17] इस प्रकार प्रेस की स्वतंत्रता देश में बाधित होने लगी।

संविधान के अनुसार नेपाली शाही सेना के निर्णय राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के हाथों में रहता है। जिसमें सदस्य होते हैं– नरेश, प्रधानमंत्री, रक्षा मंत्री, चीफ ऑफ आर्मी। परन्तु इस दौरान इस प्रावधान की अवहेलना हुई। क्योंकि प्रधानमंत्री जब रक्षामंत्री के पद को स्वयं संभालते हैं तथा चीफ ऑफ आर्मी नरेश द्वारा चुना जाता है, तो सेना पर प्रभुत्व नरेश का होगा। इस प्रकार नेपाल की शाही सेना पर जनता के प्रतिनिधियों का कोई नियन्त्रण नहीं रहा। सेना पर नरेश की मनमानी चलने लगी। इसी बात को माओवादियों ने अपनी 40 मांगों में रखा कि सेना को जनता के नियन्त्रण में छोड़ देना चाहिए।

नरेश ज्ञानेन्द्र द्वारा 4 अक्टूबर 2002 को जनता के निर्वाचित नेता शेर बहादुर देउबा को प्रधानमंत्री पद से हटाना, एक असंवैधानिक कदम था। देश में माओवादी आन्दोलन के चलते चुनाव करवाना काफी कठिन है। अतः देउबा ने चुनाव देर से करवाने के लिए नरेश से बातचीत की। परन्तु नरेश ने देउबा को अयोग्य मानते हुए बर्खास्त कर दिया। इस घटना के पश्चात् माओवादियों की सरकार के साथ हुई शांति वार्ताओं में प्रमुख मुद्दा संवैधानिक सभा की स्थापना कर एक नवीन संविधान को बनाना रहा। परन्तु सरकार इसके लिए तैयार नहीं

---

[16] Gopal Sharma, "Emergency in Nepal", *Indian Express* (New Delhi), November 27, 2002.
[17] Human Rights Features (HRF) on Maoist conflict in Nepal, see http://www.hrdc.net/sahrdc/hrfquarterly/Jan_march_2002/nepal.htm

हुई क्योंकि इससे न केवल राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन आएगा, बल्कि वर्तमान संविधान का अस्तित्व ही मिट जाएगा।

नरेश द्वारा 4 अक्टुबर, 2002 को लिये गये कदम के खिलाफ देश के प्रमुख राजनैतिक दलों ने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया तथा लोकतंत्र को पुर्नबहाल करने की मांग की। क्योंकि राजनीतिक दल इस घटना के बाद यह समझ चुके थे कि नरेश वर्तमान संविधान के प्रावधानों का दुरूपयोग करके अपनी शक्ति को बेढा रहे है। अतः इस संविधान को निरर्थक होते देख कर राजनीतिक दलों ने भी नये संविधान के लिये संवैधानिक सभा की मांग प्रारम्भ कर दी। इसके कारण माओवादियों द्वारा की जा रही संवैधानिक सभा की मांग को बढावा मिलने लगा।

वहीं शेर बहादुर देउबा के प्रधानमंत्री पद से बर्खास्त होने के बाद राष्ट्र में शक्ति केन्द्र तीन पुंजों में हो गया। प्रथम केन्द्र में नरेश एवं नरेश की सेना रही, जो कि माओवादियों को किसी भी प्रकार से कुचलना चाहती है। दूसरे शक्ति केन्द्र में स्वंय माओवादी है जो कि देश में एक नये संविधान की रचना करना चाहते है। तीसरे शक्ति केन्द्र में पांच राजनीतिक दलों का गठबंधन है जो कि चाहते थे कि नरेश पुनः जनता के चुने हुए नेता देउबा को प्रधानमंत्री के रूप मे पुर्नबहाल किया जाय। परन्तु देउबा के प्रधानमंत्री पद पर वापस आने से देश के इन शक्ति पुंजों में परिवर्तन आया तथा शक्ति केन्द्र दो ही रह गयें।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक दलों में एकजुटता के अभाव, प्रधानमंत्री पद की अस्थिर स्थिति एवं सेना के अति सक्रियतावाद के कारण माओवादी आन्दोलन को विराम देना काफी कठिन हो गया है। माओवादियों द्वारा देश की शासन व्यवस्था एवं आर्थिक व्यवस्था को चोट पहुंचाने के कारण जनसाधारण का जीवन यापन करना काफी मुश्किल हो गया है। अतः नेपाल की जनता को भी यह अहसास होने लगा है कि इस आन्दोलन को चलते हुए काफी वर्ष हो गये हैं और उनके हित में कुछ खास नहीं हुआ

है। इस प्रकार जनता का विश्वास माओवादियों के ऊपर से क्रमशः कम होता जा रहा है।

मानवाधिकारों का हनन्

माओवादी आन्दोलन प्रारंभ होने के वक्त नेपाल विश्व के सबसे गरीब देशों में दूसरे स्थान पर था। इस कारण माओवादियों ने जिन मुद्दों को अपना आधार बनाकर जनता को अपने पक्ष में लिया वे इस प्रकार थे– गरीबी हटाना, शिक्षा को बढ़ावा देना, सामाजिक उन्नति करना, संजातीय समूहों की पहचान नेपाल राष्ट्र में बनाना इत्यादि। इसलिये माओवादी आन्दोलन को पूरे राष्ट्र में फैलने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। परन्तु वहीं दूसरी तरफ देश के प्रमुख दल नेपाली कांग्रेस, राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक दल एवं साम्यवादी दल (UML) एकजुट होकर इन माओवादियों को रोकने के लिये सभी प्रकार के साधनों का इस्तेमाल करने के लिये तैयार थे।

इस कारण वर्ष 1996 से संविधान में वर्णित नागरकिों के मौलिक अधिकार एवं मानवाधिकारों का काफी हनन् हुआ है। जिसके अन्तर्गत पुलिस द्वारा बिना वॉरण्ट के किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाना, अमानवीय यातना देना, बलात्कार, पुलिस मुठभेड में निर्दोष लोगों को मारना, अन्यायिक अत्याचार करना देश में आये दिन की बात हो गई। वी. टी. पाटिल ने अपनी पुस्तक *Human Rights Developments in South Asia* में ऐसे कई पुलिस मुकदमों का वर्णन किया है जिनके द्वारा देश में बडे पैमाने पर मानवाधिकारों का हनन् हुआ है। उन्होंने लिखा है कि पुलिस कर्मचारी जनता को यह कह कर डराते हैं कि 'यदि हम माओवादियों के नाम पर कत्ल करते हैं तो वह कत्ल उनकी पदोन्नति कर देगा'।[18] पाटिल ने लिखा है कि नेपाल

[18] V.T. Patil, *Human Rights: Developments in South Asia*, (New Delhi, Author's Press, 2003), p. 253.

के संविधान में वर्णित अनुच्छेद 14 एवं 15, जेनेवा अभिसमय के अनुच्छेद 3 तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में वर्णित यातना के विरूद्ध अभिसमय (Convention Against Torture) में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि कोई भी राष्ट्र या राष्ट्र के संगठन किसी भी प्रकार से मानवाधिकारों के सम्मान एवं स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं कर पायेगें।[19] उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि नेपाल की सरकार ने उपरोक्त उल्लेखित प्रावधानों का निरन्तर उल्लंघन किया है। उनके अनुसार यदि कोई सरकारी कर्मचारी संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत मानवाधिकारों का हनन् करता है तो उसकी सजा क्या होनी चाहिए, इसका संविधान में कहीं उल्लेख नहीं किया गया है।[20]

नवम्बर, 2001 में देश में आपातकाल की घोषणा के पश्चात् नेपाली शाही सेना ने माओवादियों को दबाना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु इस दौरान नेपाल में मानवाधिकारों का हनन् और भी तेजी से होने लगा। क्योंकि सरकार का आदेश था कि कैसे भी करके इन माओवादियों के आन्दोलन को दबाया जाये। अतः सेना ने माओवादियों को दबाने के लिये अपने अभियान के दौरान संदेह की स्थिति में निर्दोष नागरिको को कैद किया तथा उनके ऊपर काफी अत्यचार किये है। उन बंदी नागरिको के लिये सरकार की तरफ से किसी भी प्रकार की न्यायिक सुरक्षा की व्यवस्था नहीं की गई है। इस प्रकार नेपाली शाही सेना के काफी मामले ऐसे है जिनके अन्तर्गत निर्दोष नागरिक सेना की कैद में है तथा उन्हें न्याय मिल पाना भी काफी कठिन है। इसके अतिरिक्त देश में तेरह ऐसे जिले भी है जहां न्यायालय का सुविधा उपलब्ध नहीं है।[21] यहां सेना के अधीन काफी नागरिक अनिश्चित काल के लिये कैद में है तथा उनके बचाव के लिये कोई भी आगे नहीं आया है। इस प्रकार सेना द्वारा भी देश में प्रबल रूप से मानवाधिकारों को आघात पहुंचा है।

---

[19] Ibid. p. 266
[20] Ibid, p. 268.
[21] International Commission of Juristsm, see (http://www.icj.org/news.php3?id_article=2951&lang=en<HTML)

माओवादियों ने भी सन् 1996 के बाद मानवाधिकारों को काफी चोट पहुंचाई है। माओवादियों ने निर्दोष नागरिकों को पुलिस का गुप्तचर समझकर देश में हत्या, लूटमार, बलात्कार एवं अन्य कई प्रकारों से जनता पर अत्याचार किया है। इन सब के चलते इन दोनों पक्षों- सरकार एवं माओवादियों- द्वारा जो सबसे ज्यादा पिस रहें हैं वो है नेपाल के वे नागरिक जो काठमांडू घाटी से दूर देश के पिछडे जिलों में रहते हैं जो कि गरीब हैं एवं जिन्हें नेपाली भाषा का अच्छी तरह ज्ञान नहीं है।

निष्कर्षतः माओवादी आन्दोलन राष्ट्र के वर्तमान संविधान के समक्ष एक चुनौती बन कर उभरा है। इस आन्दोलन के मूल उद्देश्य देश में जनता के शासन को लाना रहा है। माओवादियों ने देश की सरकार के ऊपर विगत आठ सालों से निरन्तर दबाव बनाए रखा है। इन माओवादियों का लक्ष्य देश में गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था को स्थापित करना था तथा राजतंत्र को देश से समाप्त करना था। लेकिन समय के साथ – साथ इन माओवादियों की मांगों में परिवर्तन आता गया।

परन्तु देश में आपातकाल की घोषणा के उपरान्त नेपाली शाही सेना व माओवादियों की मुठभेड़ में निर्दोष जनता का मारा जाना, देश की जनता में वर्तमान परिस्थितियों के प्रति गहरा असन्तोष लाती है। यद्यपि आंदोलन के प्रारंभ में माओवादियों को जनता का काफी सहयोग था। परन्तु इस अनिश्चित युद्ध के कारण जनता के मौलिक अधिकारों व मानवाधिकारों का निरन्तर हनन हो रहा है। अतः जनता का विश्वास इन माओवादियों के ऊपर से उठने लगा है। वहीं वर्तमान नरेश ज्ञानेन्द्र के राजनीतिक क्षेत्र में अति सक्रिय होने व नेपाल की शाही सेना को अपने नियन्त्रण में लेने से संवैधानिक राजतंत्र की छवि टूटती सी नजर आती है।

अध्याय 6

निष्कर्ष एवं भविष्य की संभावनाएं

संविधानवाद एक आधुनिक युगीन संकल्पना है जो विधि और विनियमों द्वारा शासित राजनीतिक व्यवस्था की उपेक्षा करती है। यह व्यक्ति के स्थान पर विधि की सर्वोच्चता का समर्थक है। इसमें राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और सीमित (शक्तियों वाली) सरकार के सिद्धान्तों का समावेश होता है। अतः संविधान सरकार का वह उपकरण अथवा बुनियादी नियम है जिसका उद्देश्य सरकार के मनमाने कार्यों को सीमित करना, शासितों के अधिकारों की प्रतिभूति करना और सर्वोच्च शक्ति के परिचालनों की परिभाषा करना है।

सन् 1990 का संविधान नेपाल की जनता द्वारा चलाए गये जन आन्दोलन के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया है। अतः यह संविधान जनता का संविधान कहलाया। यह संविधान राष्ट्र के राजनैतिक चरित्र को एक नया आयाम प्रदान करता है। नेपाल में अभी तक पांच संविधान आ चुके है। जिसमें से मात्र वर्तमान संविधान अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये संर्घषरत है। परन्तु विगत संविधानों के निर्माण में नरेश की भूमिका ही महत्वपूर्ण रही। यद्यपि विगत संविधानों में समयानुसार संशोधन किये गये। परन्तु जनता की भावनाओं, इच्छाओं एवं उनके अधिकरों को ये संविधान पूरा नहीं कर पाये । इन विगत संविधानों के अन्तर्गत राजनैतिक निर्णय जनता द्वारा नहीं वरन् नरेश द्वारा लिये जाते रहे। अतः शासन पर पूरी तरह प्रभुत्व नरेश का ही रहा।

सन् 1990 का संविधान अपने साथ कुछ प्रमुख संस्थात्मक परिवर्तन लेकर आया जो कि विगत संविधान में प्रतिबंधित थे। इस संविधान के आने से दलविहीन पंचायत व्यवस्था का अन्त हुआ तथा बहुदलीय व्यवस्था का आगमन हुआ। यह नवीन संविधान राष्ट्र में संवैधानिक राजतंत्र, बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था, द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका, स्वतंत्र न्यायपालिका तथा सम्प्रभुता जनता

में निहित करना इत्यादि सकारात्मक परिवर्तन अपने साथ लेकर आया है। इस संविधान के अन्तर्गत जनता के मौलिक अधिकारों एवं मानवाधिकारों को वरीयता दी गई। परन्तु विगत तेरह सालों में यह संविधान नेपाल की जनता का हित करने में कितना सक्षम हुआ है, यह प्रश्न आज नेपाल के राजनैतिक चरित्र, राजनैतिक दल, नरेश एवं शासक वर्ग के समक्ष खडा हुआ है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह संविधान सम्पूर्ण रूप से विफल हो चुका है। क्योंकि सन् 1990 के बाद से राजनैतिक जागरूकता का बढना, आम नागरिकों का राजनीति में प्रवेश, संजातीय समूहों द्वारा राजनीतिक दलों का निर्माण करना तथा सन् 2001 तक संवैधानिक राजतंत्र का बना रहना, कुछ हद तक इस संविधान की सफलता को चित्रित करते है।

वर्तमान संविधान के समक्ष ऐसे नये - नये मुद्दे उभरकर सामने आ रहे है जो इस संविधान की वैधता और स्थिरता पर प्रश्न चिन्ह लगाते है। अतः इस संविधान में गुणात्मक परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। परन्तु राष्ट्र के राजनैतिक दलों की अपरिपक्वता एवं विखण्ड़ित प्रवृति के कारण संविधान में सकारात्मक परिवर्तन लाना कठिन है। वस्तुतः राष्ट्र में बहुदलीय व्यवस्था के आगमन से एक नकारात्मक पहलू भी नजर आने लगा है। जिसके कारण देश में विखंडित राजनीति का मार्ग अवलम्बन होता है। जो कि देश की राजनीति में अस्थिरता के दौर को बढावा देती है। जिसने देश के संवैधानिक विकास को पनपने में अडचनें पैदा की है। अतः संविधान में आधारभूत परिवर्तन लाने के लिये सभी दलों का एकजुट होना आवश्यक है। परन्तु यह स्पष्ट है कि किसी संविधान के मात्र प्रावधान अच्छे होने से उस संविधान की वास्तविक गुणवत्ता का पता नहीं लगता। बल्कि वह संविधान शासक एवं शासितों के मध्य कितना सामजंस्य बैठा पाता है इसी से संविधान की सफलता का पता चलता है। सन् 1990 के संविधान में यद्यपि लोकतंत्र लाने के सभी प्रावधानों को जोडा गया है परन्तु इस संविधान में कुछ कमजोरियां रही जो कि शनैः शनैः सामने आती रहीं

है। संविधान में संसदीय व्यवस्था की बात कही गई है परन्तु यह देखा गया है कि कोई भी सरकार पांच वर्ष के अपने कार्यकाल को पूरा नहीं कर पाई है। संसद के अन्दर राजनीतिक नेताओं द्वारा आपसी गठबंधन, सांसदों की हेराफेरी एवं नरेश की अनुकम्पा से राजतंत्र पक्षीय नेताओं का प्रधानमंत्री पद पर आना। इन सब कारणों से संविधान के ऊपर निश्चित रूप से आघात हो रहा है। देश में राजनीतिक अस्थिरता एवं संकट के दौर ने जनता के अधिकारों व इच्छाओं को दबाकर रख दिया।

राष्ट्र में चल रही माओवादी समस्या भी सन् 1990 के संविधान के समक्ष एक चुनौती के रुप में सामने आया है। जिसे देश की सरकारें नियंत्रित करने में असफल रही है। जिसके कारण यह माओवादी समस्या आज देश की सुरक्षा एवं संविधान के प्रावधानों के समक्ष एक चुनौती बन चुकी है। इन माओवादियों ने इस वर्तमान संविधान के निर्माण को अलोकतांत्रिक माना है। उनके अनुसार इस संविधान का निर्माण नरेश के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा किया गया है। अतः इस संविधान को जनता का संविधान कहना गलत होगा। इसी प्रयोजन में माओवादियों द्वारा पूरे देश में सरकार के विरूद्ध आन्दोलन चलाया गया।

वर्ष 1990 के संविधान द्वारा संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की गई। जिसमें यह सोचा गया कि राजतंत्र इस संविधान की मर्यादाओं को नहीं तोडेंगें। परन्तु जो नरेश पूरे तीस साल तक देश पर एकछत्र राज करता रहा वह पुनः अपनी शक्ति को प्राप्त करने के लिये अवश्य ही कोशिश करेगा जो कि वर्तमान में कर भी रहा है। जिसका सबसे बडा उदाहरण है– 4, अक्टुबर सन् 2002 की घटना। अतः नेपाल के संविधानवाद के विकास में नरेश ने सदैव बाधा पहुंचाई है या फिर उसे अपने शासन के अनुरुप निर्धारित किया है। इसी कारण सन् 1990 के संविधान में कुछ प्रावधान ऐसे रखे गये जो नरेश को राष्ट्र शक्ति प्रदान करते हैं जिनके द्वारा वे शासन में अपनी मनमानी कर सकते है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि नेपाल के राजनीतिक दलों की अपरिपक्वता एवं सत्ता पिपासा के कारण जनता की आवाज को दरकिनार

किया गया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान दौर में नरेश के अनावश्यक हस्तक्षेपों से संविधान का औचित्य मिटता जा रहा है। इस प्रकार नेपाल के संविधान में वर्णित सैद्धान्तिक प्रावधानों से यहां की व्यवहारिक राजनीति में काफी अन्तर है। वहीं दूसरी तरफ राष्ट्र की आन्तरिक समस्याओं एवं विवादास्पद मुद्दों ने भी 1990 के बाद देश के संवैधानिक विकास में बाधा पहुंचाई है। नेपाल की भौगोलिक विवशता ने इस संविधान के कुछ प्रावधानों को पूर्ण रूप से पडौसी राष्ट्र पर निर्भर कर दिया है। अतः विगत तेरह सालों की अस्थिर एवं अनिश्चित राजनीति से संविधान विकास की तरफ नहीं बल्कि संविधान संकट कों तरफ बढा है।

भविष्य की संभावनाएं

4, अक्टुबर सन् 2002 की घटना के पश्चात् से ही सन् 1990 के संविधान के भविष्य पर प्रश्न उठने लग गये है। क्योंकि नरेश ज्ञानेन्द्र द्वारा इस दिन विधिवत् रूप से निर्वाचित नेता शेर बहादुर देउबा को प्रधानमंत्री पद से बर्खास्त कर दिया गया था। यद्यपि देउबा ने देश में माओवादी संकट के चलते नरेश से चुनाव देर से करवाने की सलाह दी। परन्तु नरेश ने देउबा को अयोग्य घोषित करते हुए उनकी सरकार को गिरा दिया। इसके पश्चात् देश भर में राजनीतिक दलों द्वारा नरेश के इस कृत्य की काफी आलोचना की गई। देश के 5 प्रमुख राजनीतिक दलों ने एक गठबंधन तैयार किया तथा लोकतंत्र को स्थापित करने के लिये आन्दोलन प्रारंभ के दिये। इस प्रकार नेपाल में त्रिकोणात्मक संर्घष प्रारंभ हो गया जिसमें नरेश राजनीतिक दल एवं माओवादी एक प्रकार से देश के शक्ति पुंज के रूप में आपस में टकराने लगे। देउबा को बर्खास्त करने के बाद देश के दो नये प्रधानमंत्री और बने। जिन्हें नरेश द्वारा चुना गया था। परन्तु लोकतांत्रिक शक्तियों के दबाव के चलते इन प्रधानमंत्रियों को इस्तीफा देना पडा। जून 2004 में नेपाल नरेश ने पुनः शेर बहादुर देउबा को देश का प्रधानमंत्री घोषित कर दिया, जिन्हें वर्ष 2002 में चुनाव न करवा

पाने के कारण नरेश ने बर्खास्त कर दिया था। अतः वर्तमान में देश के शक्ति पुंजों में परिवर्तन आया क्योंकि राजनीतिक दलों की मांगें पूरी हो चुकी है। इस विश्लेषण से भविष्य के बारे में यह कहा जा सकता है कि यदि शेर बहादुर देउबा अप्रेल 2005 में चुनाव करवा पाते हैं तो वर्ष 1990 के संविधान के स्थायित्व में निश्चित रूप से वृद्धि होगी और यदि देउबा चुनाव करवाने में असफल रहते है तो नरेश पुनः सन् 2002 की घटना दोहरा कर इस संविधान की मर्यादा को तोडेगें। नेपाल में विगत दशकों की राजनीति ने राजनीतिक दलों की कमजोरियां सामने ला दी है। इसलिये यदि नया संविधान बनेगा तो उसमें नरेश की भूमिका में वृद्धि होगी तथा राजनीतिक दलों का पतन होगा।

BIBLIOGRAPHY

(सन्दर्भ सूची)

Primary Sources

HMG/Nepal, The Constitution of the Kingdom of Nepal 2047 (1990), (Kathmandu: Ministry of Law, Justice and Parliamentary Affairs, Law Books Management Board (LBMB), Kathmandu, 1992).

HM Speeches and Messages on different occasions (since 1990).

Constitutional Debates and Discussions in the Parliament (Nepal), since 1990.

His Majesty Government of Nepal website- www.nepalhmg.gov.np

The Constitution of the Kingdom of Nepal, 1959, Kathmandu: Ministry of Law and Parliamentary Management 1959.

The Interim-Government of Nepal Act 2007 (AD 1951) (Kathmandu, 1951)

Forty Points Demand of Maoists Party, Published in Dr. Baburam Bhattarai, Barta Ra Tatkalin Rajnitik Nikas Ko Prashna, Kathmandu, Publication Department, Special Central Command, Press in CPN (Maoist), 4 February, 1996.

H.M. King Mahendra, On a new Era: Some Historic Addresses of H.M. Mahendra, Kathmandu, Department of Publicity, H.M.G., Nepal, 1961.

The Constitution of Nepal, 1962.

The Constitution of Nepal, 1948 (Effective April 1, 1948)

HMG/N, Local Self-Governance Act, 2055 (AD 1999), Ministry of Law and Justice, LBMB, Kathmandu, Nepal, 1999.

HMG/N, National Commission on Population, Inter-regional Migration in Nepal: Problems and Prospects, Kathmandu, 1984.

Human Rights in Nepal: A Status Report 2003 (National Human Rights Commission, Kathmandu)

Nepal Gazette, Kathmandu.

Treaty of Peace and Friendship, Kathmandu, July 31, 1950.

UNDP, Public Sector Management, Governance and Sustainable Human Development, New York: UNDP, January 1995.

Address of the Prime Minister of Nepal, Upon the Inaugaration of the Government of Nepal Act, 2004 BS, (1948AD)

Amnesty International Report, (1997), Human Rights Violations in the Context of Maoist Peoples' War, London

Amnesty International Report, (1999), Nepal: Human Rights at a Turning Point, London.

Amnesty International Report, (2002), Nepal: A Spiralling Human Rights Crisis, London.

Secondary Sources

Books

Baral, Lok Raj, *Nepal's Politics of Referendum: A Study of Groups, Personalities and Trends*, (New Delhi, Vikas Publishing House, 1983).

Baral, Lokraj (ed.), *Nepal: Political Parties and Parliament,* (New Delhi: Adroit Publishers, 2004)

----------, *Nepal Problems of Governance* (New Delhi, Konark Publishers, 1993).

----------, *The Regional Paradox: Essays in Nepali and South Asian Affairs*, (Delhi, Adroit Publishers, 2000).

Bista, Dor Bahadur, *Fatalism and Development: Nepal's Struggle for Modernisation,* (Patna: Orient Longman, 1999)

Chaturvedi, S.K., *Nepal: Internal Politics and its Constitutions*, (New Delhi: Inter India Publications, 1993).

----------, *Struggle and Change in South Asian Monarchies* (New Delhi: Chetana Publications, 1977).

Chauhan, R. S., *The Political Development in Nepal 1950 – 70: Conflict Between Tradition and Modernity* (New Delhi: Associated Publishing House, 1971).

----------, *Struggle and Change in South Asian Monarchies*, (New Delhi: Chetana Publications, 1977).

Dahal, Kashi Ram, *Constitutional Law* (Kathmandu: Pairavi Prakashan, 1992).

Dahal, Ram Kumar, *Constitutional and Political Developments in Nepal* (Kathmandu: Ratna Pustak Bhandar, 2001).

Dhungel, Surya P.S., Adhikari Bipin, Bhandari B.P. and Murgatroyd Chris, *Commentary on the Nepalese Constitution* (Kathmandu: DELF and Lawyer's Inc., 1998).

Dixit, Kanak Mani and Shastri, Ramachandra, eds., *State of Nepal*, (Lalitpur, Himal, 2002).

Friedrich, Carl J., *Constitutional Government and Democracy* (Calcutta: Oxford and IBH Publication, 1968).

Gellner, David N, Joanna Pfaff Czarnecka and Whelpton John, (eds.), *Nationalism and Ethnicity in a Hindu Kingdom: The Politics of Culture in Contemporary Nepal*, (Amsterdam: Harwood Academic Publishers, 1997).

Grove, Virendra (ed.), Encyclopedia of SAARC Nation, Nepal, (New Delhi: Deep & Deep Publication, 1997).

Gupta, Anirudha, *Nepalese Interviews*, (New Delhi: Kalinga Publications, 1997)

Gupta, Anirudha, *Politics in Nepal 1950 – 60*, (New Delhi: Kalinga Publications, 1993).

Gurung, Harka, *Nepal: Social Demography and Expressions*, (Kathmandu: New Era, 1998)

Hagopian, Mark N., *Regimes, Movements and Ideologies: A Comparative Introduction to Political Science* (New York: Longman Publications, 1984).

Heywood, Andrew, *Key Concepts in Politics* (London: Macmillan Press, 2000).

Hutt, Michael, ed., *Nepal in the* Nineties, (New Delhi: Oxford University Press, 1994).

Jha, Hari Bansh, *The Terai and National Integration in Nepal*, (Kathmandu: Centre for Economic & Technical Studies and Friedrich Ebert Stiftung, 1993).

Joshi, Bhuwan, Lal and Rose Leo E., *Democratic Innovations in Nepal* (Berkeley: University of California Press, 1966).

Khadka, Narayan, *Politics and Development in Nepal: Some Issues* (Jaipur: Nirala Publications, 1994).

Kumar, Dhruba (ed.), *State, Leadership and Politics in Nepal*, (Kathmandu: CNAS, TU, 1995).

Kumar, Dhruba, ed., *Domestic Conflict and Crisis of Governability in Nepal* (Kathmandu: Center for Nepal and Asian Studies, 2000).

Mitra, Subrata K. and Dietmar Rothermund (eds.), *Legitimacy and Conflict in South Asia*, (New Delhi: Manohar, 1998).

Muni, S.D., *Maoist Insurgency in Nepal: The Challenge and the Response*, (New Delhi: Rupa Publishers and Observer Research Foundation, 2003)

----------, (ed), *Nepal: An Assertive Monarchy*, (New Delhi, Chetna Publications, 1977).

----------, *India and Nepal: A Changing Relationship*, (New Delhi, Konark Publishers, 1992).

Nath, Tribhuvan, *Nepalese Dilemma: 1960-1974*, Sterling Publications, New Delhi, 1975

Pai Panandikar, V. A., (ed.), *Problems of Governance In South Asia*, (New Delhi: Konark, 2000).

Pant, Shastra Dutta, *Comparative Constitutions of Nepal*, (Kathmandu: SIRUD, 1995).

Parmanand, *The Nepali Congress and its Inception*, (New Delhi: B R Publishing Corporation, 1982).

Patil, V.T., *Human Rights: Developments in South Asia*, (New Delhi, Author's Press, 2003).

Raeper, William and Hoftun Martin, *Spring Awakening*, (New Delhi: Viking Publishers, 1992).

Rose, Leo E, *Nepal Strategy for Survival*, (New Delhi, Oxford University Press,1973)

Sanwal, B.D., *Social and Political History of Nepal*, (New Delhi: Manohar Publishers, 1993).

Shaha, Rishikesh, , *Modern Nepal (Vol. 1 and 2)*, Manohar Publications, , 1990

Shaha, Rishikesh, *Modern Nepal: A Political History 1769-1955*, (New Delhi: Manohar Publications, 1990)

Shaha, Rishikesh, *Politics in Nepal 1980 – 1991: Referendum, Stalemate and Triumph of People Power*, (New Delhi: Manohar Publishers, 1993).

Thapa, Deepak, *Understing the Maoist Movement of Nepal,* (Kathmandu: Martin Chautari, 2003).

Thapilyal, Sangeeta, *Mutual Security: The Case of India-Nepal*, (New Delhi: Lancers Publishers & Distributors, 1998).

Tripathi, Hari Bansh, *Fundamental Rights and Judicial Review in Nepal: Evolutions and Experiments* (Kathmandu: Pairavi Prakashan, 2002).

Upreti, Bishnu Raj, *The Price of Neglect: From Resource Conflct to Maoist Insurgency in the Himalayan Kingdom,* (Kathmandu: Bhrikuti Academic Publications, 2004).

Verma, Anand Swaroop, *Maoist Movement in Nepal*, (New Delhi, Samkalin Teesri Duniya, 2001).

Articles

"Nothing New About Violation of Constitution by Monarchy: Former CJ", *The Kathmandu Post*, Kathmandu, Thursday, November 28 2002.

"Statute – Framers for all-Party Government", *The Himalayan Times*, Thursday, July 31, 2003.

Adhikari, Bipin, "Role of the Supreme Court: Nepalese Perspective", *Essays on the Constitutional Law*, (Kathmandu: Nepal Law Society), 1991, vol.9.

Albano, Terrie, "Nepal Faces Maoist and State Violence", *People's Weekly World Newspaper Online*, May 4, 2002, see www.pwww.org/article/view/1147/1/81

Baral, Lok Raj, "Nepal in 2001: The Strained Monarchy", *Asian Survey,* vol.42,no.1, January- February 2002

Baral, Lok Raj, "Nepal: search for a Prime ministerial System" *South Asia Politics*, vol.1, no.4, August 2002

Bhattarai, Baburam, "Triangular Balance of Forces", *Economic and Political Weekly*, (Mumbai), November 16, 2002.

Budhathoki, Shobhakar, "Conflict, Human Rights and Derailed Peace Process in Nepal", *Journal of Peace Studies*, vol. 10, issue 3, July – September 2003.

Chanda, Sudipta, "Parties Seethe at Deuba Ouster", *Statesman News Service*, October 5 2002.

Dahal, rajendra, "Nepal's Remittance Bonanza", *Himal*, vol.13, no.2, February 2000

Dastidar, Mollica, "Nepal's Friendly Democracy", *Mainstream*, vol.35, no.52, 6 December 1997

Dixit, Kanakmani, "Nepal: King and Parties", *Himal,* vol.16, no.6, June 2003

Ghai, Yash, "Crisis Beyond Legality", *Himal*, November 2003.

Ghimire, Somnath, "Nepal's Baby Democracy!", *The Nepal Digest*, Year 15, volume I, issue 1, Friday January 23, 2004.

Goswami, Arnab, "Nepal: Monarchy and Maoist", *World Today*, Vol.58, no.7, July 2002

Gurung, Surya Kiran, "Parliamentary Practise and Procedure in Nepal", *Nepali Journal of Contemporary Studies*, Vol. II, No. 2, (Kathmandu), September 2002.

Jha, , Nalini Kant, "Domestic Turmoil in Nepal: Implications for Nepalese and Indian Security", *Journal of Peace Studies*, (New Delhi), vol. 10, Issue 2, April June 2003.

Jha, Nalini Kant, "Civil Strife in Nepal: Challenges and Road Ahead", *South Asia Politics*, June 2003.

Khanal, Y.N., " Nepal in 1997: Political Stability Eludes", *Asian Survey*, Vol. XXXVIII, No. 2 (February, 1998).

Koirala, Niranjan, "Nepal in 1990: End of an Era", *Asian Survey*, Vol. XXXI, No. 2 (February, 1991).

Kramer, Karl-Heinz, "Nepal in 2002: Emergency and Resurrection of Royal Power", *Asian Survey*, vol.43, no.1, January-February 2003

Kramer, Karl-Heinz, "Nepal in 2003: Another Failed Chance for Peace", *Asian Survey*, vol.44, no.1, January- February 2004

Lal, C K, "Nepal's Quest for Modernity", *South Asian Survey*, vol.8, no.2, July-August 2001

----------, "Nepal's Maobaadi" *Himal,* November 2001

Lawoti, Mahendra, "Nepal: Breakdown of Democracy", *Economic and Political Weekly*, vol.36, no.50, 15-21 December 2001

Mackinlay. John, Bishnu Upreti, "The King and Mao", *The World Today*, Vol.59, no.2, February 2003

Mishra, Birendra P., "Nepal: A Fragile Democracy", *South Asia Politics*, (New Delhi), May 2003.

Pandey, Shri Nischal Nath, "Nepal's Maoist Movement and Implications for India", *USI Journal*, Jan- Dec, 2002

Paramanand, "Monarchy and Maoism", *The Statesman* (Kolkata), May 30, 2003.

Paramanand, "Withered Democracy – II", Editorial, *The Statesman*, (Kolkata), February 20, 2004.

Parmanand, "Crisis in Nepal – I", *The Statesman* (Kolkata), March 15, 2002.

Pattanaik, Smruti S., "Maoist Insurgency in Nepal: Examining Socio-Economic Grievances and Political Implications", *Strategic Analysis*, (New Delhi, Institute for Defence Studies and Analyses), vol. 26, no. 1, January – March 2002.

Pettigrew, Judith and Shneiderman, Sara, "Ideology and Agency in Nepal's Maoist Movement", *Himal*, (Lalitpur), vol. 17, no. 1, January 2004.

Pradhan, Keshav, "State of Emergency declared in Nepal", *The Hindustan Times*, November 20, 2002.

Pradhan, Suman, "Citizenship Row Festers in Nepal", *Asia Time Online*, October 19 2001, see www.atimes.com

Public Opinion Trends Analyses and News Service, vol. X, no. 1, January 27 2004.

Public Opinion Trends Analyses and News Service, vol. X, no. 29, May 31 2004.

Ramchandran, Shastri, ""Nepal on a Knife's Edge", *Mainstream*, vol.39, no.25, June 2001

Rijal, Mukti, "Nepalese Constitutional Organs: Making the Ombudsmen Active", *Rising Nepal* (Kathmandu), 17 September 1996.

Rok, Hari, "Militarisation and Democratic Rule in Nepal", *Himal*, (Lalitpur), vol 16, no. 11, November 2003.

Sekharan, Chandra S., "Is Nepal Still in Search of a Political Order: 1990 Constitution and Thereafter", *South Asian Analysis Group*, Paper No. 481, 24 June 2002.

Sharma, Gopal, "Emergency in Nepal", *Indian Express* (New Delhi), November 27, 2002.

Shrestha, Shyam, " Nepali cart before horse", *Himal*, vol.10, no.5, September-October 1997.

Thapa, Ganga Bahadur, "Political Transition in Nepal: Whither Democratisation?" *Pakistan Horizon* (Islamabad), vol. 52, no. 2, April 1999.

Thapa, Manjushree, Hari Roka, *Nepal: Politics of Fragmentation,* Economic and Political Weekly, August 21-28, 1999.

Thapliyal, Sangeeta, "Mahakali Accord: An Integrated Approach to Develop Water Resources", *Strategic Analysis,*(New Delhi, Institute for Defence Studies and Analyses), June 1996

Upreti, B.C., "Nepal: In Search of Good Governance", *Asian Studies,* vol.19, no.2, July-December 2001

Wadlow, Rene, "Nepal Watch: A Priority" *Tibetan Review*, vol.37, no.9, September 2002

Journals/ Periodicals

Asian Studies

Asian Survey

Economic and Political Weekly

Himal

Journal of Peace Studies

Mainstream

Nepal Press Digest

Nepal Press Report

Nepali Journal of Contemporary Studies

Pakistan Horizon

Public Opinion Trends Analyses and News Services

South Asia Politics

Strategic Analysis

The Nepal Digest

Tibetan Review

USI Journal

World Today

Newspapers

Deshantar (Kathmandu)

Hindustan, (New Delhi)

National Herald, (New Delhi)

Rising Nepal, (Kathmandu)

The Asian Age, (New Delhi)

The Himalayan Times, (Kathmandu)

The Hindu, (Chennai & New Delhi)

The Janadesh Weekly (Kathmandu)

The Kantipur (Kathmandu)

The Kathmandu Post, (Kathmandu)

The Pioneer, (New Delhi)

The Statesman, (Kolkata & New Delhi)

The Times of India, (New Delhi)

Web Pages

http://web.amnesty.org

http://www.atimes.com

http://www.himalmag.com

http://www.insof.org

http://www.nepalnews.com

http://www.southasiamonitor.org/nepal

www.icj.org

www.orfonline.org